अध्याय 1 - साहित्यानुवाद और अनुवाद मूल्यांकन : सैद्धांतिक पक्ष

1.1 काव्यानुवाद

1.1.1 बिंबानुवाद

1.1.2 प्रतीकानुवाद

1.1.3 मिथकानुवाद

1.1.4 अलंकारानुवाद

1.1.5 छंदानुवाद

1.1.6 लोकोक्ति और मुहावरे का अनुवाद

1.2 अनुवाद मूल्यांकन

1.3 अनुवाद मूल्यांकन : प्रकार

1.4 अनुवाद मूल्यांकन : प्रविधि

1.5 अनुवाद मूल्यांकन : सोपान

अनुवाद के माध्यम से एक भाषा में कही गई बात को दूसरी भाषा में व्यक्त किया जाता है। प्राचीन काल से ही अनुवाद का सामाजिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। वर्तमान वैश्वीकरण के युग में अनुवाद की भूमिका अनिवार्य रूप से महत्वपूर्ण हो गयी है। अनुवाद हमारी सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक आवश्यकता बन गया है। देशी-विदेशी भाषिक समाज के सृजनात्मक साहित्यानुभूति के लिए, विज्ञान एवं तकनीकी ज्ञान के लिए, उद्योग-व्यापार पर्यटन के लिए, तथा बौद्धिक विमर्श आदि के विकास में अनुवाद महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

विषय-वस्तु की दृष्टि से अनुवाद को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है - साहित्यिक अनुवाद और साहित्येतर अनुवाद। सृजनात्मक साहित्य के अन्तर्गत कविता, उपन्यास, कहानी आदि साहित्यिक विधाओं को शामिल किया जाता है। सृजनात्मक साहित्य के मुख्य आधार तत्व हैं अनुभूति, भाव, कल्पना आदि। जब सृजनात्मक साहित्य का अनुवाद एक भाषा से दूसरे भाषा में किया जाता है, वह साहित्यिक अनुवाद कहलाता है। जिस तरह साहित्य में प्रयुक्त भाषा, बिंबों, प्रतीकों के कारण लक्षणा और व्यंजना प्रधान होती है और मूल लेखक देश-काल, संस्कृति विचार, भाव अनुभूति कल्पना आदि तत्व से जुड़े होते हैं उसी तरह सृजनात्मक अनुवादक भी अपने अनूदित पाठ में यथासंभव इन तत्वों को सुरक्षित रखने का प्रयत्न करते हैं। साहित्यिक अनुवाद कलापरक आलंकारिक, शैलीपरक होते हैं । इसमें भावानुवाद महत्वपूर्ण होता है । इसमें अनुभूति, रसात्मक समतुल्य प्रभाव आवश्यक होता है । इसलिए यह पुनर्सृजन की प्रक्रिया है ।

साहित्यानुवाद के अंतर्गत रचनात्मक साहित्य को स्रोत भाषा से लक्ष्य भाषा में भाषांतर करते हैं। साहित्य की विधाओं का सम-विधाओं में तथा विधा रूपांतरित करके अनुवाद होता है। विधा के आधार पर साहित्यिक अनुवाद की

प्रकृति भी भिन्न होती है । इसलिए काव्यानुवाद की प्रकृति अन्य विधा से अलग होगी।

1.1 काव्यानुवाद - जिस तरह कविता सृजनात्मक अभिव्यक्ति है उसी तरह उसका अनुवाद पुनःसृजनात्मक अभिव्यक्ति है जिसमें अनुवाद को मूल कृति के भाव एवं अभिव्यक्ति सौंदर्य को लक्ष्य भाषा में पुन:सृजित करना पड़ता है। यद्यपि गद्य या पद्य दोनों का अनुवाद काव्य रूप में हो सकता है, किंतु, प्राय: काव्य का अनुवाद काव्य में ही करने का प्रचलन अधिक है। आदर्श स्थिति भी यही है । कविता एक असाधारण अभिव्यक्ति होती है। वह अपने समाज के गहरे सांस्कृतिक बोध से जुड़ी होती है।

वास्तव में एक अनुवादक के लिए कविता का अनुवाद करना चुनौती भरा कर्म है। उन्हें अनुवाद प्रक्रिया के दौरान काव्यानुवाद को काव्यगत उपादानों के विभिन्न स्तरों पर समस्याओं का समाना करना पड़ता है, और उसे सफलतापूर्वक पार भी करना होता है। एक काव्यानुवादक के सामने अनुवाद प्रक्रिया के दौरान मुख्यत: दो घटक सामने होते हैं, जिससे वह गुजरते हुए कठिनाई का सामना करता है-विषय-वस्तुगत और शैलीगत ।

काव्य की विषय वस्तु का आधार अनुभूति और विचार होता है, जो अमूर्त होता है स्थूल रूप से घटना-विधान भी इसके आधार होते हैं। डॉ. नगेन्द्र के अनुसार- "काव्य की विषय वस्तु का निर्माण मूलत: अनुभूति और विचार के आधार पर होता है किंतु प्रबंध काव्य में कथा अर्थात घटना विधान का भी समावेश अनिवार्यत: रहता है।"[1] काव्य के उपर्युक्त तीनों तत्वों में घटनाओं का अनुवाद करना निश्चय ही सरल होता है, क्योंकि इसका स्वरूप प्राय: मूर्त होता है। काव्य के संदर्भ में अनुवादक को घटनाओं के व्यंग्यार्थ को ध्यान में रखना आवश्यक होता है, और उसको आधुनिक बोध के साथ भी जोड़ना पड़ता है।

[1] नगेंद्र (सं) : अनुवाद विज्ञान:अनुप्रयोग और सिद्धांत,1993, पृ-165

अनुवाद समस्याओं के संदर्भ में विचार और अनुभूति का अनुवाद अधिक विचारणीय है.

काव्य में विचार-तत्व अमूर्त होता है। इसके अनुवाद के लिए अनुवादक को मूल-वैचारिक प्रत्यय को जानना होता है। डॉ. नगेन्द्र का मत है कि "विचार का संप्रेषण, उसके सूक्ष्म-रूप के कारण, निश्चय ही कठिन है विचार या धारणा का संप्रेषण उसके अमूर्त रूप के कारण निश्चय ही कठिन होता है, किंतु सूक्ष्म प्रत्यय होने पर भी विचार का स्वरूप निश्चित तथा स्थिर होता है। प्रत्येक धारणा, चाहे वह सही हो या गलत अपने आप में निश्चित तथा स्थिर होती है, और सुधी अनुवादक बौद्धिक अभ्यास के द्वारा उसके तत्व को ग्रहण कर पारिभाषिक पर्यायों तथा यथावश्यक परिभाषा-कोशों की सहायता से उसे अपनी भाषा में प्रस्तुत करता है।"[1] इस उद्धरण से स्पष्ट होता है कि अनुवाद में विचार संप्रेषण हेतु अनुवादक को मूल विचार या धारणा का अध्ययन कर उसे ठीक से आत्मसात करना चाहिए।

काव्य में अनुभूति का स्वरूप अमूर्त एवं तरल होता है, इसलिए इसका अनुवाद अधिक कठिन होता है। डॉ.नगेन्द्र लिखते हैं- "अनुभूति के अनुवाद की कठिनाई यह है कि उसका स्वरूप अमूर्त होने के साथ-साथ तरल भी होता है। सूक्ष्म-तरल पदार्थ का स्थानांतरण अपने आप में अत्यंत कठिन कार्य है।...हाँ, भावना के संदर्भ में एक तथ्य अनुवादक की सहायता करता है, वह है मानव चेतना में व्याप्त सहज अंत:सूत्र, जिसके कारण एक ही परिस्थिति में मानव-मानस चित्र में समान भाव उद्भव हो जाते हैं।"[2] उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि अनुभूति को बहुत सावधानी पूर्वक प्रतिस्थापित करना पड़ता है,ताकि मानव के अन्त:मूल गुण के कारण मन भाव परिस्थिति पाकर उद्बुद्ध हो जाय।

कविता के अनुवाद के संदर्भ में प्रमुख समस्या रस योजना से भी संबंधित है। कविता में रस मूल तत्व होता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने निबंध 'कविता

---

[1] नगेंद्र (सं) : अनुवाद विज्ञान:अनुप्रयोग और सिद्धांत,1993, पृ-165

[2] नगेंद्र (सं) : अनुवाद विज्ञान:अनुप्रयोग और सिद्धांत,1993, पृ-165

क्या है' में लिखा है- "जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञान दशा कहलाती है, उसी प्रकार हृदय की यह मुक्तावस्था रस दशा कहलाती है। हृदय की इसी मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द विधान करती आयी है, उसे कविता कहते हैं।"[1] इस तरह कविता में रस योजना एक आवश्यक तत्व होता है।एक अनुवाद पाठ के लिए भी यह आवश्यक होता है कि लक्ष्य भाषा के पाठक उससे कितना जुड़ पाता है । मूल कृति में जैसी रसास्वादन की स्थिति बनती है उतनी ही अनूदित कृति में भी बननी चाहिए। 'रस के अनुवाद के संदर्भ में कुसुम वीर जी लिखती हैं- "मूल रचना में लेखक ने जिस भाव-विशेष पर बल दिया हो, वह अनुवाद में भी अवतरित होना चाहिए। ऐसा न होने पर अनुवाद असफल ही कहा जाएगा। मूल रचना में विभिन्न प्रकार के रसों का संयोजन हो सकता है, जैसे श्रृंगार, शोक, क्रोध, उत्साह आदि।"[2] इस तरह स्पष्ट है कि मूल रचना में जिस तरह का भाव हो, अनूदित पंक्ति में वही भाव होना चाहिए। यह तभी संभव बनता है, जब काव्य में कल्पनात्मक भाषा का प्रयोग किया जाता है।

काव्य-शैली का अनुवाद अधिक कठिन होता है। शैली की अपेक्षा 'वस्तु' का अनुवाद सरल होता है। इमेज या बिंब, प्रतीक, मिथक इत्यादि को जब हम शब्दबद्ध करते हैं, वही शैली है। डॉ. नगेन्द्र का मत है कि "शैली अपने आप में एक अपूर्ण अभिव्यंजना है-भाव या विचार को व्यक्त करने के लिए। अत: अपूर्ण को दूसरी भाषा में रूपांतर करना तो और भी अपूर्ण अभिव्यक्ति है।"[3] स्पष्ट है कि विदेशी भाषा के संदर्भ में तो शैली का अनुवाद करना और भी कठिन है। जी. गोपीनाथन ने लिखा है कि "काव्यानुवाद की सबसे जटिल समस्या मूल की शैली है, जिसके निर्माण में काव्य परंपरा, मिथक, आलंकारिक प्रयोग आदि का हाथ रहा है। ...काव्य भाषा का बुनियादी तत्व शब्द होता है और शब्द की अर्थ

---

[1] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल :चिंतामणि,भाग एक, 2001 पृ -88

[2] नीता गुप्ता(सं.): अनुवाद, (अंक -138), ,पृ-.15

[3] नगेंद्र (सं) :अनुवाद विज्ञान:अनुप्रयोग और सिद्धांत,1993,पृ-65

ध्वनि एवं नाद-सौंदर्य पर अनुवादक को पूरा ध्यान रखना पड़ता है।"[1] अतः काव्य शैली का अनुवाद करना चुनौती भरा काम है। काव्य में सृजित एवं प्रयुक्त बिंब, प्रतीक, मिथक, छंद, अलंकार, मुहावरे एवं लोकोक्ति के अनुवाद प्रक्रिया में आने वाली समस्याओं तथा उसके समाधान का विवेचन निम्न रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है।

1.1.1 बिंबानुवाद

काव्य में बिंब वह महत्वपूर्ण माध्यम है जिसके द्वारा कवि अपने हृदयगत भावों तथा विचारों को मूर्त एवं स्पष्ट रूप में चित्रित करने में सफल होता है। "बिबों के द्वारा वस्तु, घटना, व्यापार, गुण, विशेषता, विचार आदि का साकार तथा निराकार पदार्थों और मानसिक क्रियाओं को प्रत्यक्ष और इन्द्रियग्राह्य बनाता है।"[2] काव्य व्यापार में अर्थ ग्रहण की अपेक्षा बिंब ग्रहण को अधिक महत्व दिया गया है।

साहित्य-रचना प्रक्रिया में बिंबों की योजना महत्वपूर्ण होता है। समस्त रचनात्मक अप्रस्तुत विधान किसी न किसी रूप में बिंबों पर निर्भर करता है। प्रतीक विधान, मिथ, फंतासी तथा अलंकरण का मूल संबंध बिंब से ही है। बिंब से ही चित्रात्मकता, ऐन्द्रियता और साम्य-सौंदर्य की गुणवत्ताओं का समावेश होता है। अनुभूति, भाव, आवेग और ऐन्द्रियता के तत्व इन्हीं से नियोजित होते हैं। उत्तेजनात्मक, सौंदर्यात्मक, अनेकार्थकता, संश्लिष्टता, सम्बन्धात्मकता, सटीकता, रूपकात्मकता और प्रेषणीयता इन्हीं पर निर्भर करती है। इसलिए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल बिंब ग्रहण को आवश्यक मानते हुए लिखते हैं- "काव्य में अर्थग्रहण मात्र से काम नहीं चल सकता है, बिंब ग्रहण अपेक्षित होता है।यह बिंब ग्रहण निर्दिष्ट, गोचर और मूर्त विषय का ही हो सकता है ।"[3] काव्य में

---

[1] जी॰ गोपीनाथन : :अनुवाद सिद्धांत एवं प्रयोग ,2008,पृ.-29

[2] भागीरथ मिश्र:भारतीय काव्यशास्त्र. *1998, पृ*-105

[3] रामचन्द्र शुक्ल, चिंतामणि, प्रथम भाग, 2001,पृ. 90

बिंब का प्रयोग चित्रात्मकता और तन्मयता की स्थिति उत्पन्न करने के लिए सर्वाधिक होता है।

काव्यभाषा में काव्यगत बिंब विविध प्रकार के होते हैं जो विभिन्न आधारों पर बाँटे गये है। ऐन्द्रिय संवेदन के आधार पर दृश्य, श्रव्य, स्वाद्य, स्पर्श्य, गंधपरक और मिश्रित बिंब होते हैं। अनुभूति के आधार पर सरल, खण्डित और संश्लिष्ट बिंब देखने को मिलते हैं। ओम अवस्थी का कथन है- "रचनाकार कई प्रकार से बिंबो का निर्माण कर सकता है। कोई दृश्य बिंब, कोई घटना, कोई संवेदन, कोई विचार या धारणा, कोई उपमान रूपक या प्रतीक में सभी बिंब विधान के स्रोत हो सकते हैं। इनके पीछे उनकी अभिरुचि गुणग्राहकता और उद्देश्यपरकता का विशेष हाथ होता है।"[1] मूर्तता के आधार पर स्थूल ओर सूक्ष्म बिंब तथा वस्तु के आधार पर प्रकृति और जीवन संबंधी बिंबो की बात की जाती है ।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि बिंबो के वर्गीकरण का आधार अलग-अलग हैं। वास्तव में बिंबो का वर्गीकरण विवेचन की सुविधा और बिंब वैविध्य को समझने के लिए किया जाता है, परन्तु वर्गीकरण से बिंब-रचना की संश्लिष्टता को समझ पाना संभव नहीं है। रचना करते समय कोई रचनाकार यह नहीं सोचता कि वह किस प्रकार के बिंब का सृष्टि कर रहा है।

कोई कवि या लेखक अभिव्यक्ति को प्रभावी बनाने के लिए बिंब विधान करता हैं, ताकि सहृदय या पाठक भी प्रभावी रूप में मनोजगत के विशिष्ट क्षण को, सूक्ष्म भगिमा को ग्रहण कर सके। अत: बिंब-योजना साहित्यिक भाषा का अनिवार्य गुण होता है। एक काव्यानुवादक या साहित्यिक अनुवादक भी बिंबात्मकता के पुनर्सृजन के दायित्व से बच नहीं सकता। इसलिए साहित्यिक अनुवादक को बिंब प्रक्रिया का अच्छी तरह जानकारी होना नितांत आवश्यक हो

[1] ओम अवस्थी: रचना प्रक्रिया *1970*,पृ.-205

जाता है ताकि मूल पाठ के भाषागत सौंदर्य शैलीगत स्तर पर सुरक्षित संप्रेषित हो सके।

बिंबानुवाद की समस्याओं के समाधान के संदर्भ में डॉ. सुरेश सिंहल ने पाँच सोपानों का उल्लेख किया है- बिंबों का पुरूत्पादन, आद्य बिंबों का अनुवाद, बिंबों का उपमा में रूपांतरण, बिंबों का भाव संप्रेषण और बिंबों का परित्याग।

(1) **बिंबों का पुनरुत्पादन -** एक भौगोलिक या सामाजिक क्षेत्र में अंतर हो सकता है, किन्तु मानवीय भावनाएँ ,संवेदनाएँ ,संस्कृति तथा प्राकृतिक उपादानों में अंतर बहुत कम होता हैं। इसलिए बिंबों की पुनरुत्पादन करना चाहिए । "...भाषागत भिन्नता होते हुए भी अर्थवहन की दृष्टि से सभी भाषाओं में बिंबगत समानता मिलती है। एक समान की स्थिति बनाती है। बिंबात्मकता का यह क्षेत्र मुख्यत: प्रकृति का क्षेत्र है। प्रकृति के स्थूल उपादान प्राणी जगत में पशु-पक्षी सब स्थानों पर अपनी व्यवहारिकता में किन्हीं रूढ़ अर्थों के वाचक हो गये हैं। इसलिए वे सर्वत्र एक समान ही बिंब-विधान बनाते हैं।"[1]इस तरह स्पष्ट है कि अर्थवहन की दृष्टि से सभी भाषाओं में बिंबगत समानता हो सकती है, किंतु सांस्कृतिक प्रभाव के कारण इन बिंबों में थोड़े बहुत अंतर को नकारा नहीं जा सकता।

(2) आद्य- बिंबों का अनुवाद - ठेठ पौराणिक, गूढ़ सांस्कृतिक बिंब अथवा दर्शन प्रधान या धर्म प्रधान संदर्भ जुड़ने से आद्य-बिंब की स्थिति बनती है। आद्य बिंब की पुनरुत्पादन की संभावना कम रहती है। डॉ. सुरेश सिंहल लिखते हैं- "बिंबानुवाद की समस्याओं के समाधान के संदर्भ में दूसरा सोपान वह है जहाँ स्रोत भाषा के बिंबो का लक्ष्य भाषा में पुनरुत्पादन संभव न होने की स्थिति में उनका अनुवाद कर दिया जाता है। अनुवाद संबंधी यह स्थिति प्राय: आद्य-बिंबों(archaic image) के संदर्भ में ही उत्पन्न होती है।"[2] आद्य बिंब किसी

---

[1] नीता गुप्ता(सं.) : अनुवाद-शतक विशेषांक, (अंक -100-101),जुलाई-सितम्बर1999,पृ.207

[2] नीता गुप्ता(सं.) : अनुवाद-शतक विशेषांक, (अंक -100-101),जुलाई-सितम्बर1999,पृ.208

पौराणिक आख्यान पर ही आश्रित होते हैं। उदाहरण के लिए 'सरस्वती' का अनुवाद अंग्रेजी में 'muse' के रूप में किया जा सकता है, परन्तु 'ब्रह्मा', 'विष्णु' आदि के लिए अंग्रेजी पर्यायवाची नहीं मिलता। इस तरह स्पष्ट है कि आद्य बिंबो का पुनरुत्पादन समकक्ष बिंबों की स्थिति प्राय: नहीं बनती है। इस स्थिति उसका अनुवाद कर देना ही उचित होता है ।

(3) बिंबों का उपमा में रूपांतरण - तीसरा सोपान स्रोत भाषा से लक्ष्य भाषा में रूपांतरण है। सुरेश सिंहल लिखते हैं- "जहाँ बिंब का रूपान्तरण और अनुवाद संभव न हो तो उसे किसी व्यंजक उपमा में ढाला जा सकता है।"[1] स्रोत भाषा की छवि को उपमा में स्थापित किया जाना ही अभिप्रेत होता है। डॉ. सिंहल उदाहरण प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं- "यदि किसी युवती की 'slimness' का वर्णन हो तो उसे हिंदी लक्ष्य भाषा में उपमा की दृष्टि से 'कनकलता' अथवा 'छरहरी कगली बाजरे की' आदि रूपों में प्रस्तुत किया जाय तो मूल बिंब स्वत: ही प्रेषित हो जाता है।

4. बिंबों का भाव संप्रेषण - कई बार दोनों भाषाओं में बिंब समान रूप से उपस्थित होते हैं, लेकिन उससे भिन्न अर्थ निकलता है। ऐसी स्थिति में जब " पुनरुत्पादन अनुवाद और उपमा के माध्यम से रूपांतरण संभव न हो तो स्रोत भाषा के बिंबों का लक्ष्य भाषा में भाव संप्रेषित कर दिया जाता है।"[1] स्पष्ट है कि जहाँ भावानुवाद की आवश्यकता हो वहाँ उसी युक्ति को अपनाना चाहिए।

5. बिंबो का परित्याग - जहाँ बिंबों का अनुवाद बिल्कुल संभव नहीं हो वहाँ प्रसंग को सुरक्षित रखते हुये बिंबों का त्याग कर देना चाहिए। "बिंबानुवाद की समस्याओं के समाधान के संदर्भ में अंतिम सोपान वह है जहाँ उपर्युक्त चारों स्थितियों में बिंब का अनुवाद संभव न होने की स्थिति में बिंब का लक्ष्य भाषा में परित्याग कर दिया जाता है। इस परित्याग से आशय बिंबत्व अथवा बिंब

---

[1] नीता गुप्ता(सं.) : अनुवाद-शतक विशेषांक, (अंक -100-101), जुलाई-सितम्बर1999,पृ.210

धर्म के परित्याग से है न कि प्रसंग अथवा पंक्ति में से उस स्थिति का परित्याग जो कि बिंब द्वारा प्रकट हो रही है।"[1] उक्त उद्धरण से स्पष्ट होता है कि यदि किसी युक्ति से बिंबानुवाद नहीं संभव हो पा रहा है तो उसका त्याग कर देना चाहिए, किंतु प्रसंग की पूर्णता की क्षति न हो इसका ध्यान रखा जाना चाहिए।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि बिंब के अनुवाद करते समय विभिन्न स्थितियों का सामना करना पड़ सकता है। मूल अर्थ सौंदर्य को ध्यान में रखते हुए बिंबानुवाद के उपर्युक्त उचित युक्ति का प्रयोग करना चाहिए।

1.1.2. प्रतीकानुवाद

आधुनिक साहित्य में 'प्रतीक' अंग्रेजी के 'Symbol' का हिंदी रूपांतरण है। इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका के अनुसार- "प्रतीक शब्द का प्रयोग उस दृश्य वस्तु के लिए होता है जो मस्तिष्क के सम्मुख किसी अप्रस्तुत विषय की सादृश्यता को अपने संबंध सूत्रों द्वारा प्रस्तुत करती है।"[2]

अंग्रेज विद्वान वेबेस्टर मानते हैं कि प्रतीक का कार्य अदृश्य वस्तु का दृश्य द्वारा संकेत है। कृष्ण कुमार गोस्वामी ने उनको उद्धृत करते हुए लिखा है- "प्रतीक अपने संबंध, सामंजस्य, रूढ़ि अथवा संयोग से किसी अन्य वस्तु की ओर संकेत करता है, परन्तु उसका उद्देश्य समानता अथवा सादृश्यता नहीं हैं, वह मुख्यत: किसी अदृश्य वस्तु का दृश्य संकेत है।"[3]

उक्त परिभाषाओं के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि प्रतीक मानवीय संवेदना से युक्त एक संकेत करते हैं जिसके माध्यम से सूक्ष्म भाव, अर्थ एवं

---

[1] नीता गुप्ता(सं.) : अनुवाद-शतक विशेषांक, (अंक -100-101), जुलाई-सितम्बर1999, पृ . -211

[2] "The Term (Symbol)Given to visible object representing to the mind the resemblance of something which is not shown but realised by association with it."-Encyclopaedia britanica

[3] कृष्ण कुमार गोस्वामी:काव्यशास्त्र मार्गदर्शन, 1970, पृ॰-233

विचार को परम्परागत या स्वेच्छा से व्यक्त करते हैं। प्रतीक योजना काव्य को संप्रेषणीय तथा प्रभावशाली बनाती है पर उसका ठीक-ठीक अर्थ ग्रहण करना पाठक केलिए असंभव नहीं दुरूह अवश्य होता है। कबीर के काव्य की अध्यात्मिक अनुभूति में प्रतीक एक गहरा रंग भरता है किन्तु अनुभूति जीवन तथा परिचित सिद्धांत की नई अभिव्यक्ति प्रतीकों द्वारा अधिक चमत्कारी ढंग से होती है।

कृष्ण कुमार गोस्वामी प्रतीकों की विशेषता बतलाते हुए लिखते हैं कि "काव्य में प्रतीकों की योजना विभिन्न प्रयोजनों की सिद्धि के लिए की जाती है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ये भाव या विचार को जाग्रत करने की क्षमता रखते हैं। हमारे इन्द्रियजन्य से संबंधित विषयों के अतिरिक्त कुछ विषय ऐसे होते हैं जिनका हमें प्रत्यक्ष इन्द्रियजनित ज्ञात नहीं होता, परन्तु उनकी कल्पना हम अधिकतर अपने तक, विश्वास या अनुमान द्वारा करते हैं। ब्रह्म विष्णु, शिव को हमने देखा नहीं है। परन्तु उनके नाम से ही मन में स्वरूपगत विशेषताएँ आ जाती है। इस प्रकार से हमारे विश्वास तथा अनुमान को स्पष्ट करते हैं।"[1] अतः प्रतीक की विशेषता होती है कि वह भाव विचार को जागृत कर देता है ।

प्रतीक की सहायता से कल्पना को अधिक सूक्ष्म, संक्षिप्त तथा सौंदर्ययुक्त बनाया जा सकता है। ऐसा प्रतीक के माध्यम से ही संभव है। डॉ. कुमार विमल का मत है- "काव्य एवं कला-जगत में 'सूक्ष्म सौन्दर्य' को व्यक्त करने के लिए प्रतीकों का प्रयोग किया जाता है। क्योंकि प्रतीकों के बिना सूक्ष्म सौंदर्य की अभिव्यक्ति असंभव है।"[2]

---

[1] कृष्ण कुमार गोस्वामी:काव्यशास्त्र मार्गदर्शन,1970, पृ॰-234

[2] कुमार विमल, सौंदर्यशास्त्र के तत्व, 1981, पृ. 282

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने काव्य भाषा की चार मुख्य विशेषताओं में प्रतीक को भी एक विशेषता बताई है। उनका कथन है कि "भावना को मूर्त रूप में रखने की आवश्यकता के कारण कविता की भाषा में दूसरी विशेषता यह रहती है कि उसमें जाति संकेत इसके शब्दों की अपेक्षा विशेष रूप-व्यापार सूचक शब्द अधिक रहते हैं।"[1] स्पष्ट है कि भावना के मूर्त रूप रखने के लिए प्रतीकों की योजना की जाती है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्रतीक काव्यगत अनुभूतियों को धारण करते हैं। यह अप्रस्तुत वर्णन के शक्तिशाली माध्यम हैं। प्रतीक के माध्यम से काव्य में संक्षिप्तता, संकेतात्मकता और प्रभावात्मकता आदि विशेषताएँ आती हैं और यह सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवेश से घनिष्ठ रूप से संबद्ध होती है।

अनुवाद के व्यापक अर्थ में प्रतीकांतर भी अनुवाद का एक प्रकार माना जाता है। इसमें केवल विधा परिवर्तन होता है। पश्चिमी विद्वान रोमन याकोब्यन ने इस पर विस्तृत रूप से विचार किया है। वैसे यहाँ साहित्य के संदर्भ में प्रतीकानुवाद से अभिप्राय एक भाषा से दूसरी भाषा में प्रतीक योजना का पुनर्विन्यास से है।साहित्यिक अनुवादक को भाषा की प्रतीक योजना की गहन जानकारी रखना अपेक्षित है। प्रतीकात्मक शब्दार्थ के लिए कोश पर निर्भर नहीं रहा जा सकता है क्योंकि वह अप्रस्तुत अर्थ को व्यंजित करता है। प्रतीकों के गूढ़ अर्थ होते हैं। दार्शनिक एवं रहस्यवादी रचनाओं में गूढ़ अर्थ के पारिभाषिक अर्थ भी होते हैं।

रूपकात्मक काव्य के संदर्भ मे देखा जाय तो वह पूर्ण रूप से प्रतीकात्मक होता है। ऐसे काव्यों में पात्रों को ज्यों का त्यों लिप्यंतरित कर संदर्भ को स्पष्ट किया जाना अपेक्षित रहता है। "रूपकात्मक काव्य में, जो अपनी पूर्णता में ही प्रतीकात्मक होता है, अनुवादक को पूरी रचना में प्रतीक के सफल निर्वाह का ध्यान रखना पड़ता है। ऐसी रचना में पात्र, परिस्थितियाँ तथा घटनाएँ सभी कुछ प्रतीकात्मक हो सकता है। अनुवादक को संज्ञात्मक स्तर पर पर पात्रों और

[1] राम चन्द्र शुक्ल, चिंतामणि प्रथम भाग, 2001, पृ.-176

घटनाओं आदि को लिप्यांतरण द्वारा ज्यों का त्यों रखना चाहिए। उनके स्पष्टीकरण के लिए उसे भूमिका में पहले से ही रचनागत व्यवस्था प्रस्तुत करना चाहिए ताकि लक्ष्य भाषा के पाठक को फिर वह अनुवाद किसी भी प्रकार, दुश्पाच्य प्रतीत न हो।"[1] इससे स्पष्ट होता है कि रूपकात्मक काव्य में पात्र , घटना परिस्थितियाँ, घटनाएँ प्रतीकात्मक होता है इन्हें लिप्यान्तरित कर पाद टिप्पणी में मूल अर्थ स्पष्ट कर देना चाहिए। ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, पौराणिक प्रतीकों के अनुवाद मे भी उक्त युक्ति का सहारा लेना चाहिए। "कुछ प्रतीकात्मक अभिव्यक्तियों का भावानुवाद भी किया जा सकता है। ...ऐसी स्थिति में ध्यान देने योग्य बात होती है कि स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा में भावों की समानता होनी चाहिए वरना अर्थ का अनर्थ होते देर नहीं लगती।"[2] अतः भावों की समानता होने पर ही भावानुवाद किया सकता है।

इस तरह स्पष्ट है कि स्रोत भाषा में जो प्रतीक प्रयुक्त हो रहा है उसका लक्ष्य भाषा का यर्थाथवादी शब्द अर्थ व्यंजित करता है कि नहीं? यदि वही प्रतीक मूल अर्थ को व्यक्त करे, तभी उसका प्रयोग करना चाहिए।

डॉ. सुरेश सिंहल ने लिखा हैं कि "सामान्यतया प्रयुक्त होने वाले प्रतीकों का अनुवाद पूर्ण रचनागत प्रतीकानुवाद की तुलना में सरलतम कार्य है। रचना में कहीं कहीं प्रयुक्त प्रतीक किसी स्थिति, संदर्भ अथवा मानसिकता विशेष के सूचक होते हैं। इन प्रतीकों में कवि उपमा की भाँति गुणाधार पर किसी भी भौतिक वस्तु को संप्रेष्य भाव के लिए प्रयुक्त करता है।"[3]

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्रतीक योजना काव्य को संप्रेषणीय तथा प्रभावशील बनाती है। प्रतीक की अपनी सांस्कृतिक, सामाजिक, पौराणिक अर्थ होता है। भाषांतर में भी इन प्रतीकात्मक प्रभावशीलता या उसके भाव को

---

[1] नीता गुप्ता(सं.) : अनुवाद-शतक विशेषांक, (अंक -100-101),जुलाई-सितम्बर1999 पृ -.203

[2] नीता गुप्ता(सं.) : अनुवाद-शतक विशेषांक, (अंक -100-101),जुलाई-सितम्बर1999 पृ.-203-204

[3] वही, पृ - 203-204

सुरक्षित रखना पड़ता है। इसलिए प्रतीकानुवाद के लिए अनुवादक को भाषा-समाज के संदर्भ में प्रतीकों का सही अर्थ की जानकारी होनी चाहिए। तभी अनूदित पाठ में प्रतीकों का पुनर्विन्यास या उसका सटीक अर्थ सुरक्षित रह सकता है।

1.1.3 **मिथकानुवाद**

मिथक ऐसे संदर्भ हैं, जिनके पीछे पूर्व धारणा या विश्वास शक्ति निहित होती है। मैथली प्रसाद भारद्वाज के अनुसार- "ऐसी किसी भी कथा को, जो विचारणा और आलोचना शक्ति से सर्वथा शून्य, आदिम चेतना की स्वयं-स्फूर्त उद्भावना होती है, मिथ कहा जाता है।"[1] काव्य भाषा में लौकिक तथा अलौकिक तत्वों का मिश्रण ही मिथक है। लौकिक तत्व प्रत्यक्ष अनुभूति है और अलौकिक अध्यात्म तत्व। मिथक आध्यात्मिक चेतना तथा सामान्य विचारों के गठन के आरम्भिक रूप है। कला, धर्म, मिथक एक दूसरे के पूरक है।

मिथक के निम्नलिखित तत्व माने जा सकते हैं- "(1) इसमें किसी देवता या देवताओं अथवा पराप्राकृतिक शक्ति का विवरण रहता है।(2). इसमें आदिम मन परिलक्षित होता है। (3) इसकी धार्मिक महत्ता होती है, तथा इसकी आवृत्ति के पीछे धर्म लाभ की आकांक्षा विद्यमान रहती है और (4) इसमें सर्जना या तो सृष्टि के साथ मनुष्य की संबंध की व्याख्या के लिए अथवा सामाजिक संस्थाओं तथा प्रथाओं आदि की व्याख्या के लिए की जा सकती है।"[2]

मिथक के अनुवाद के संदर्भ में डॉ. भारती गोरे का कथन है- "कई बार खींचतान कर मिथक का अनुवाद किया जाना लक्ष्य भाषा की प्रकृति के प्रतिकूल सिद्ध होता है। ऐसे मिथक का लक्ष्य भाषा के पाठकों को ज्ञान नहीं होते अत:

---

[1] मैथिली प्रसाद भारद्वाज: पाश्चात्य काव्य शास्त्र के सिद्धांत,1994,पृ॰-296

[2] नीता गुप्ता (सं.) : अनुवाद-शतक विशेषांक, (अंक -100-101),जुलाई-सितम्बर1999, पृ॰-297

इनका अनुवाद सार्थक सिद्ध नहीं होता।"[1] मिथकों में संदर्भ तथा संबंधित कथा का महत्व स्वयं सिद्ध होता है। ऐसी कथाएँ तथा संदर्भ उस भाषा के जीवन से जुड़े होते हैं अत: इन्हें पूरी तरह अनूदित मानकर चलना पड़ता है। बहुत कम ऐसे मिथक होते हैं, जिनका समतुल्य मिथक लक्ष्य भाषा में मिलता है।

डॉ. भारती गोरे मिथकानुवाद की समस्याओं का समाधान पर विचार करते हुए लिखती हैं- "स्रोत भाषा के पाठ में प्रयुक्त मिथक लक्ष्य भाषा में थोड़े-बहुत बदलाव के साथ मिल जाय यह संभव नहीं हो पाता। इस स्थिति में शब्दानुवाद या भावानुवाद की अपेक्षा लिप्यान्तर, व्याख्या, टिप्पणी, पद टिप्पणी का प्रयोग समाधान के रूप में किया जाना चाहिए।"[2] इस तरह स्पष्ट है कि मिथक को लिप्यांतरण ही कर दिया जाय, और उसका स्पष्टीकरण दे दिया जाय, यही बेहतर स्थिति होती है, क्योंकि मिथक अपने परिवेश के पौराणिक-धार्मिक कथा से जुड़ा होता है, जिसके समतुल्य दूसरे भाषा में शब्द खोजना असंभव प्रतीत होता है।

1.1.4 अलंकारानुवाद

जिस तरह कविता मानव की सृजनात्मक शक्ति का सुन्दरतम रूप है, उसी तरह अलंकार उस कविता का सौंदर्य शक्ति है। भारतीय काव्य शास्त्र में भामह, दण्डी, रुद्रट आदि आचार्यो ने अलंकार को ही काव्य की आत्मा सिद्ध किया है। पाश्चात्य रूपवादियों में एक वर्ग अलंकारवादियों का रहा है। चाहे भारत के चिंतक हो या पश्चिम के, वे अपनी निष्पत्तियों में यही सिद्ध करते हैं कि अलंकार कविता में सौंदर्य का सृजन करता है और चमत्कार उत्पन्न करता है। भगीरथ मिश्र अलंकार को परिभाषित करते हुए लिखा है- "अलंकार वाणी के विभूषण हैं। सामान्य बात अलंकारों से विभूषित होकर एक विशेष मनोहरता से

---

[1] भारती गोरे, अनुवाद निरूपण 2008, पृ॰288

[2] भारती गोरे, अनुवाद निरूपण 2008, पृ॰289

सम्पन्न हो जाती है। अत: अलंकार साधारण कथन न होकर, चमत्कार पूर्ण उक्ति है।"[1]

अलंकार दो प्रकार के होते हैं शब्दालंकार और अर्थालंकार। अर्थालंकार के अंतर्गत उपमा, रूपक, अनुप्रास आदि आते हैं, और शब्दालंकार के अंतर्गत श्लेष, यमक, मानवीकरण आदि। प्रत्येक भाषा में अलंकारों की अपनी-अपनी प्रकृति है। प्रकृति के अनुसार अलंकारों की संख्या भी अलग-अलग है।

जिस तरह अन्य काव्य तत्वों का अनुवाद कठिन है उस तरह अलंकार का भी अनुवाद कठिन होता है। अनुवादक का यथासंभव शैली को भी सुरक्षित रखना होता है जिससे मूल पाठ के कलात्मक सौंदर्य से उत्पन्न प्रभाव का पुनरुत्पादन हो सके। काव्यात्मक भाषा कलात्मक होती है। अत: उसका अनुवाद कलात्मक रूप में ही करना चाहिए। लेकिन अलंकारों के अनुवाद होने की सीमा है। इसके अनुवाद में अनुवादक को कठिनाइयाँ झेलनी पड़ती है। बिंब विधान, अलंकार विधान, आदि कई तत्व ऐसे होते है जो अनुवादक के सामने चुनौती खड़ी करते हैं।

'विद्धान काव्यानुवाद में अलंकार अनुवाद को अत्यन्त कठिन मानते हैं। भोलानाथ तिवारी मानते हैं कि "काव्यानुवाद में अलंकारों की समस्या अलग ही है। अलंकार दो प्रकार के होते हैं शब्दालंकार, अर्थालंकार। शब्दालंकार के आधार दो है ध्वनि समानता तथा एक शब्द के एकाधिकार अर्थ। जहाँ ध्वनि समानता वाले अनुप्रास के विविध भेदों का प्रश्न हैं, इनके अनुवाद के लिए लक्ष्य भाषा में स्रोत के शब्दों के ऐसे प्रतिशब्दों की खोज आवश्यक है जिनमें ध्वनि साम्य हो। यह खोज काफी कठिन है कभी-कभी असम्भव भी।"[2] जहाँ तक अंग्रेजी रचना का प्रश्न है उसका अलंकार का आधार भिन्न है। किन्तु एक काव्यानुवादक को मूल संवेदना को बिना क्षति किए अनूदित रचना में लाना

---

[1] भागीरथ मिश्र :काव्यशास्त्र ,2001 पृ॰-156

[2] भोलानाथ तिवारी और महेंद्र चतुर्वेदी(सं.):काव्यानुवादकी समस्याएं,1993,पृ.-61

होता है। इसलिए जहाँ अलंकारनुवाद लाना संभव है वहीं अलंकारों को प्रतिस्थापित करना चाहिए।

सामान्यतः अलंकारानुवाद की समस्याओं पर विचार करते हुए उसे कुल छह प्रमुख भागों में बाँटा जा सकता है -1. श्लेष के अनुवाद की समस्याएँ, 2. यमक के अनुवाद की समस्याएँ, 3. मानवीकरण के अनुवाद की समस्याएँ, 4. उपमा के अनुवाद की समस्याएँ 5. रूपक के अनुवाद की समस्याएँ 6. अनुप्रास के अनुवाद की समस्याएँ।

1) श्लेष के अनुवाद की समस्याएँ

श्लेष अलंकार में एक ही शब्द का असमान अर्थ होता है। अलंकारों में श्लेष और यमक अलंकार का अनुवाद करना प्राय: असंभव होता है, क्योंकि ऐसा आवश्यक नहीं कि दोनों भाषाओं में एक जैसे शब्द मिल जाएँगे। "जब ऐसा श्लेष किसी सांस्कृतिक संदर्भ अथवा ऐतिहासिक पुरुष के नाम विशेष पर प्रयुक्त हुआ हो तो उसका अनुवाद किसी भी प्रकार संभव नहीं हो सकता ।"[1] स्पष्ट है कि श्लेष का अनुवाद करना कठिन है। दो विजातीय भाषा होने पर और भी कठिन है। श्लेष अलंकार के प्रतिस्थापन के संदर्भ में सुरेश सिंहल कहते हैं- "सांस्कृतिक व्यक्तियों और स्थानों के नामों के रूप प्रयुक्त श्लेषों अनुवाद की समस्या में समाधान के लिए केवल इतना ही कहा जा सकता है कि इन्हें लक्ष्य भाषा में ज्यों का त्यों रखकर पाद टिप्पणियों में इनके श्लेषात्मक अर्थ को स्पष्ट कर देना चाहिए।"[2]अतः श्लेष के अनुवाद में पाद टिप्पणी की सहायता लेनी चाहिए ।

2. यमक के अनुवाद की समस्याएँ

श्लेष की तरह ही यमक अलंकार के अनुवाद की समस्याएँ आती है। यमक अलंकार में दो समान शब्दों का अलग-अलग अर्थ होते हैं। जैसे विद्यापति की एक पंक्ति-

---

[1] नीता गुप्ता(सं.) : अनुवाद-शतक विशेषांक, (अंक -100-101), जुलाई-सितम्बर1999, पृ -194

[2] वही, पृ - 194

"सारंग नयन वचन पुन सारंग,सारंग तसु समधाने।
सारंग उप उगल दउ सारंग,केलि करहि मधुपाने।"[1]

उक्त पद में सारंग का प्रयोग क्रमश: मृग, कोयल, कामदेव, कमल, भ्रमर के लिए हुआ है । श्री अरविन्दो के अनुवाद में यमक का अनुवाद संभव नहीं हो पाया, तो उन्होने उसमें निहित अर्थ को ही अनूदित पद में अंतरित किया। सारंग के लिए उन्होंने क्रमश: “Cuckoo's speech,...atelope,seyes....Love...Two totuses,..bees.."[2] का प्रयोग किया है। सुरेश सिंहल लिखते हैं- "...असंभव श्लेषों और यमकों के अनुवाद की समस्या समाधान हेतु अन्वय संप्रेषण पद्धति और लिप्यांतरण संप्रेषण पद्धति का सहारा लिया जा सकता है।"[3] उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि यमक के अलंकारानुवाद में अन्वय संप्रेषण और लिप्यंतरण संप्रेषण पद्धति की सहायता लेनी चाहिए ताकि लक्ष्य भाषा के पाठक मूल अर्थ भाव को समझ सके।

3. मानवीकरण के अनुवाद की समस्याएँ

मानवीकरण अलंकार में प्राकृतिक उपादानों को मानव के रूप में चित्रित किया जाता है। मानवीकरण का अनुवाद अपेक्षाकृत आसान है। मानवीकरण अंग्रेजी भाषा-साहित्य से ही हिंदी भाषा साहित्य में आया है। हिंदी छायावादी कवियों ने अंग्रेजी रचनाओं के मानवीकरण को उसी प्रकार हिंदी छायावादी कविता में ग्रहण कर लिया है। “एक भाषा से दूसरी भाषा में मानवीकरण करते समय अनुवादक को केवल इतना ध्यान रखना चाहिए कि कभी-कभी भाव का

---

[1] रामबृक्ष बेनीपुरी :विद्यापति पदावली, 2007,पृ॰-41

[2] अरबिंद :सोंग्स ऑफ विद्यापति ,1956, पृ.-19

[3] नीता गुप्ता(सं.) : अनुवाद-शतक विशेषांक ,(अंक -100-101),जुलाई-सितम्बर1999,पृ -195

व्यंजक उपादान दूसरी भाषा में भिन्न हो सकता है, तो उसे लक्ष्य भाषा के उपादान का ही प्रयोग करना चाहिए।"[1]

4. उपमा के अनुवाद की समस्याएँ

अर्थालंकार की अपेक्षा शब्दालंकार का अनुवाद अधिक संभव है। उपमा अलंकार भी एक शब्दालंकार का एक प्रकार है। उपमा उस सादृश्य को कहा जाता है जहाँ तक ही वाक्य में दो वस्तुओं के सादृश्य को साधर्म्य के द्वारा उपमान उपमेय, तुलना दिखना जाता है। लक्ष्य भाषा में उपमा अलंकार को सुरक्षित प्रतिस्थापित किया जा सकता है। इसलिए अनुवादक के लिए उपमेय और उपमान को लक्ष्य भाषा में पुन: प्रस्तुत करना सरल है।

डॉ. सुरेश सिंहल ने उपमा अलंकार के स्तर पर अनुवाद करते समय निम्न समस्याओं की ओर संकेत करते हैं-

"1. लक्ष्य भाषा में समानार्थक उपमानोपलब्धि - उपमा के अनुवाद की आदर्श स्थिति वह होती है जब स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा में समान अर्थ के वाहक उपमान उपलब्ध हो। इसलिए अनुवादक को सर्वप्रथम समानार्थक उपमानों की खोज करनी चाहिए।"[2] उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि जिस शब्द में मूल की तरह अर्थ निहित हो, उसी शब्द का चयन करना चाहिए।

"2. लक्ष्य भाषा में निकटार्थ उपमानो की खोज- उपमा के अनुवाद में समानार्थक उपमान उपलब्ध न होने की स्थिति में लक्ष्य भाषा में स्रोत भाषा के उपमान का निकटार्थक उपमान खोजना चाहिए। यद्यपि इस प्रकार के उपमान पूर्ण रूप से स्रोत भाषा के उपमानों के समानार्थक नहीं कहे जा सकते, फिर भी इनकी सहायता से यथासंभव उससे मिलते-जुलते भाव को दर्शाया जा सकता"[3] स्पष्ट है कि समानार्थक उपमान नहीं मिलने पर अनुवादक को निकटार्थ उपमान खोजना

---

[1] नीता गुप्ता(सं.) : अनुवाद-शतक विशेषांक, (अंक -100-101),जुलाई-सितम्बर1999, पृ -102

[2] नीता गुप्ता(सं.) : अनुवाद-शतक विशेषांक, (अंक -100-101),जुलाई-सितम्बर1999,पृ -196

[3] नीता गुप्ता(सं.) : अनुवाद-शतक विशेषांक, (अंक -100-101),जुलाई-सितम्बर1999, पृ -197

चाहिए।

"3. स्रोत भाषा के उपमानों को लक्ष्य भाषा के अनुररूप ढालना - उपमाओं के अनुवाद में अगली समस्या तब उत्पन्न होती है जब स्रोत भाषा के उपमानों के लिए लक्ष्य भाषा में समानार्थक व निकटार्थक उपमान उपलब्ध नहीं हो पाते। ऐसी स्थिति में स्रोत भाषा के उपमानों को लक्ष्य भाषा के अनुरूप ढालना चाहिए।"[1]

"4. स्रोत भाषा के उपमानों का लक्ष्य भाषा में अनुवाद - इस संदर्भ में अगली समस्या तब आती है जब उपर्युक्त तीनों स्थितियों का अभाव होता है। ऐसे में अनुवादक को स्रोत भाषा के उपमानों का लक्ष्य भाषा में अर्थानुवाद ही करना पड़ता है,..."[2] इस प्रकार स्पष्ट है कि लक्ष्य भाषा में उपमान की उपलब्धता न होने पर उसका अर्थानुवाद या भावानुवाद ही कर देना उचित है।

"5. स्रोत भाषा के सांस्कृतिक उपमानों की लक्ष्य भाषा में अनुपलब्धि - इसी प्रकार की अन्य समस्या उस समय देखने से मिलती है जब स्रोत भाषा के उपमान सांस्कृतिक संदर्भों में प्रस्तुत होते हैं और लक्ष्य भाषा में उनका कोई उपर्युक्त समकक्ष उपलब्ध नहीं होता। ऐसी स्थिति में उपमानों का अनुवाद भाव अर्थ के स्तर पर ही किया जा सकता है और पाठक की सुविधा के लिए टिप्पणी में उसे स्पष्ट कर देना चाहिए।"[3]

"6. स्रोत भाषा के सांस्कृतिक उपमानों का लक्ष्य-भाषा में सांस्कृतिक उपलब्धि- उपमा के अनुवाद के संदर्भ में अगली समस्या तब देखने को मिलती है जब स्रोत भाषा का उपमान प्रतीकात्मक हो सकता है कि लक्ष्य भाषा में उसी अर्थ का सूचक प्रतीकात्मक उपमा मिल जाये लेकिन यह भी हो सकता है कि न ही

---

[1] नीता गुप्ता(सं.) : अनुवाद-शतक विशेषांक, (अंक -100-101),जुलाई-सितम्बर1999, पृ -197

[2] वही, पृ -197

[3] वही, पृ-198

मिले। कई बार एक ही उपमान दोनों भाषाओं में विभिन्न प्रतीकों के लिए प्रयोग में लाए जा सकते हैं।"[1]

उपरोक्त उद्धरण से स्पष्ट होता है कि यह आवश्यक नहीं है कि स्रोत भाषा के उपमान जो अर्थ बोध कराता है वही उपमान लक्ष्य भाषा में वही अर्थ बोध कराएं। अतः प्रतीकात्मक उपमान का अनुवाद करते समय व्याख्यात्मक रूप से विस्तार कर उपमान रखनी चाहिए ।

"**7. स्रोत भाषा के लक्ष्य-भाषा के उपमानों में समानता होते हुए भी अर्थ भिन्नता का होना -** उपर्युक्त समस्या के बाद एक अन्य महत्वपूर्ण समस्या अनुवादक के सामने तब आती है जब लक्ष्य भाषा का उपमान स्रोत भाषा के उपमान जैसा होते हुए भी भिन्न अर्थ का सूचक हो।"[2]

जैसे 'वह गाय सा है'। गाय भारतीय संस्कृति में 'सज्जनता' का प्रतीक है, वही अंग्रेजी भाषिक समाज में मूर्ख का। इसलिए उक्त वाक्य का अनुवाद she is like cow नहीं किया जा सकता है। इसलिए cow के स्थान पर और उपमान ढूँढना पड़ेगा। 'वह कामदेव जैसा सुंदर' है में कामदेव के लिए (cupid) नहीं किया जा सकता, क्योंकि वे कामदेव के समान अर्थ नहीं रखते हैं। इस स्थिति में सिंहल जी का कथन है- " ... ऐसा करते समय किसी ऐसी भाषा अथवा संस्कृति से भी यह उपमान लिया जा सकता है जिसका लक्ष्य भाषा पर प्रभाव हो या उसे स्वीकार कर लिया जा सकता है जिसका लक्ष्य भाषा पर प्रभाव हो या उसे स्वीकार कर लिया हो जैसे अंग्रेजी पर ग्रीक भाषा का अत्यधिक प्रभाव है और बहुत से सांस्कृतिक शब्द इसमें आ गए हैं।"[3]

---

[1] नीता गुप्ता(सं.) : अनुवाद-शतक विशेषांक ,(अंक -100-101),जुलाई-सितम्बर1999,पृ -198

[2] वही, पृ-199

[3] वही, पृ -199

रूपक का अनुवाद

जहाँ उपमेय में उपमान का आरोप कर दिया जाता है वहाँ रूपक अलंकार होता है" रूपक में उपमान और उपमेय अभेद होता है। इसके लिए तीन बातों का होना आवश्यक है - (क) उपमेय को उपमान का रूप देना; (ख) वाचक पद का लोप; (ग) उपमेय का भी साथ-साथ वर्णन।

अंग्रेजी में भी इस तरह के अलंकार पाए जाते हैं, जिसे 'Metaphor' कहा जाता है। इस स्थिति में मूल भाषा (हिंदी) के लक्ष्य भाषा (अंग्रेजी) में रूपकालंकर के अनुवाद की संभावना बनती है ।रूपक-अलंकार के अनुवाद के संदर्भ में बिन्दुओं पर विचार किया जा सकता है - "1. रूपक के अनुवाद में सर्वप्रथम अनुवादक को दोनों भाषाओं के समानार्थक उपमान उपमेय की समानता का ध्यान रखना चाहिए।... 2. रूपक की अगली समस्या उस समय प्रस्तुत होती है जब दोनों भाषाओं के उपमानों में समानता होते हुए भी अर्थ संप्रेषण में कठिनाई का सामना करना पड़ता है।... 3.स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा के उपमान- उपमेय जब अर्थ के स्तर पर भिन्नता दर्शाते हैं तो अनुवादक के लिए समस्या उत्पन्न करते हैं ।...4. रूपक के अनुवाद में प्राय: अनुवादक को उपमान-उपमानों के अर्थगत आवगत महत्व को पहचानकर ही उनका अनुवाद करना पड़ता है।...5. रूपक के अनुवाद में कई बार संयुक्त रूपक (Composite metaphor) के अनुवाद की समस्या भी देखने में आती है"[1] उक्त विवरण के आधार पर कहा जा सकता है कि मूल भाषा में रूपक के प्रयोग संप्रेषित अर्थाप्रभाव के सुरक्षित रहे, तभी समान उपमान-उपमेय का प्रयोग होना चाहिए।

अनुप्रास के अनुवाद की समस्याएँ

जहाँ वर्णों की आवृत्ति होती है वहाँ अनुप्रास अलंकार होता है। यह आवश्यक नहीं होता है कि यदि मूल भाषा में अनुप्रास है तो लक्ष्य भाषा में इसकी बुनावट करना सहज हो जायेगा। बहुत कुछ अनुवादक के शब्द भंडार पर

[1] नीता गुप्ता(सं.) : अनुवाद-शतक विशेषांक, (अंक -100-101), जुलाई-सितम्बर1999, पृ -199

निर्भर करता है। 'स्रोत भाषा के अनुप्रास की लक्ष्य भाषा में हु-ब-हु प्रस्तुति असंभव नहीं तो कठिन अवश्य होती है तथा अनुवादों को देखकर यही सोचने को विवश होना पड़ता है कि अनुवाद में स्रोत भाषा का लक्ष्य भाषा में अंतरण करते-करते हमने क्या खोया और क्या पाया।"[1]

इस प्रकार, उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि अलंकार का अनुवाद करना सरल नहीं है। विशेषकर अर्थालंकार का अनुवाद और भी कठिन है। परन्तु शब्दालंकार का अनुवाद काफी सीमा तक किया जा सकता है। अनुवादक को यह हमेशा ध्यान रखना चाहिए कि अनूदित काव्य में अलंकार योजना करते समय मूल अर्थ की क्षति न हो ।

1.1.5 छंदानुवाद

काव्यभाषा का छंद से घनिष्ठ संबंध होता है। काव्य रचना को उसके संवेगात्मक रूपाकार ले आने का प्रथम माध्यम लय है। काव्य में छंद योजना से लय सृजित किया जाता है। छंद काव्य में अन्तर्निहित भावों को संप्रेषणीय और सरस बना देते हैं। लय और ताल से युक्त छंदोबद्ध कविता हमारे मन में मधुरता का संचार करती है। रागात्मकता एक तरह से काव्य भाषा की विशिष्टता है। राग छंद से ही उत्पन्न होता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल लिखते हैं "छंद के बंधन के सर्वथा मात्र में हमें तो अनुभूत नाद सौंदर्य की प्रेषणीयता (Communicability of sound implse)का प्रत्यक्ष ह्रास दिखाई पड़ता है।"[2]

जो कुशल कवि होते हैं वे रसानुकूल छंदों का चयन करते हैं। गुण, अलंकार आदि की तरह छंदों का विन्यास भी रस पोषण में सहायक होते हैं जिस छंद की पद योजना गति, लय आदि जिस भाव एवं रस, के अनुकूल होते है, सफल कवि उसी छंद के रसानूभुति का प्रयोग करते हैं। लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय के अनुसार "लय से काव्य में निरंतर गति और प्रवाह उत्पन्न होता है। छंद उस

---

[1] राम गोपाल सिंह जदौन : अनुवाद के विविध आयाम ,2009 पृ. -120

[2] आचार्य राम चन्द्र शुक्ल : चिंतामणि (काव्य में रहस्यवाद), पृ. -135

गति को तीव्र, कहीं मंद, कहीं शांत करता है।"[1] इस प्रकार स्पष्ट है कि छंद में लय निहित रहती है, जिससे काव्य में गतिमयता तथा संगीतात्मकता का संचार होता है। किंतु आधुनिक भाषा में कवि यह मानने लगे कि छंद के जटिल नियमों के बंधन से कवि के भाव प्रकाशन में बाधा उत्पन्न होती है। निराला जी ने तो छंद मुक्त कविता का आंदोलन ही चला दिया।

प्रत्येक भाषा का छंद विन्यास का आधार अलग-अलग होता है। जहाँ हिंदी में अक्षर, अक्षरों की संख्या, मात्रा एवं गति-यति के आधार पर छंदों की योजना की जाती है, वहीं अंग्रेजी में स्वराघात को आधार बनाया जाता है। इस स्थिति में अनुवाद को क्या करना चाहिए यह एक प्रश्न है?

छंदानुवाद की समस्या पर विचार करते हुए रीतारानी पालीवाल लिखती है, “काव्यानुवाद करते समय अनुवादक को स्रोत भाषा के छंद में परिवर्तन करने की स्वतंत्रता होती है। अनुवादक को कई बार लगता है छंद बदल देने से कविता का रूपात्मकता बदल जायेगा। किन्तु ऐसा सोचते समय वह नहीं समझता की छंद से चिपके रहने पर और भी गंभीर गलती हो जाने की संभावना रहती है। प्रत्येक कविता में कवि का अनुभव विचार और अनुभूति विशेष ढंग से अनुस्यूत होता है, जिसमें एक के बाद दूसरा भाव-चित्र गुथा होता है, जिससे एक अनिवार्य लय उत्पन्न होती है और लय एक विशिष्ट छंद में अभिव्यक्त होती है। किन्तु किसी दूसरी भाषा में वहीं छंद-छंद प्रयुक्त होने पर हो सकता है कि वह लय कुंठित हो जाय।"[2] उक्त उद्धरण से स्पष्ट होता है कि प्रत्येक भाषा के छंद की अपनी विशिष्टता होती है। छंद को मूलभाषा की तरह लक्ष्य भाषा में विन्यास करने से मूल लयात्मक सौंदर्य नष्ट हो जाता है। आगे रीतारानी पालीवाल लिखती हैं "अत: अनुवादक को सर्वप्रथम कविता में निहित लय और उसके आभ्यन्तरिक अवधारकों को खोजना चाहिए और अनुवाद करते समय इनसे अलग नहीं हटना

---

[1] पश्चिमी आलोचना शास्त्र : लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, पृ 135

[2] रीता रानी पालीवाल : अनुवाद प्रक्रिया एवं परिदृश्य, 2004, पृ .73

चाहिए। छंद का अर्थ छिपाकर रखी हुई वस्तु। अर्थात् छंद कवि का निजी राज होता है।"[1]

छंदानुवाद संबंध में नगीचंद्र सहगल लिखते हैं, "इस संबंध में आधुनिक काव्य-मर्मज्ञ छंद को काव्य का ही अनिवार्य अंग मानने में संकोच करने लगे हैं। ऐसी दशा में छंदोबद्ध रचना के अनुवाद के लिए अनिवार्यता का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता।"[2] उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट होता है कि काव्यानुवाद में लक्ष्य भाषा में मूल छंद का अनुवाद या पुनर्विन्यास अत्यन्त कठिन कार्य है। यदि ऐसा किया भी जाय तो मूल पाठ का अर्थ सौंदर्य की अपूर्णनीय क्षति हो जायेगी। इसका मुख्य कारण यह है कि प्रत्येक भाषा में छंदों में विन्यास के आधार अलग है। हिंदी में छंद योजना का आधार अक्षर, अक्षरों की संख्या, मात्रा एवं गति-यति है, किन्तु अंग्रेजी में स्वाराघात छंद योजना का आधार है। इसलिए हिंदी से अंग्रेजी रूपांतरण में छंद का अनुवाद असंभव लगती प्रतीत होता है। फिर भी लक्ष्य भाषा में लय के सृजन हेतु काव्यानुवाद मूल के समानान्तर चरण और तुकांत लाने की चेष्टा करते है।

1.1.6 लोकोक्ति एवं मुहावरे का अनुवाद

मनुष्य की सामाजिक संगठन का मुख्य आधार भाषा है। इसलिए भाषा मनुष्य का धरोहर है। भाषा के अंतर्गत मुहावरा और लोकोक्तियाँ विशिष्ट संपत्ति है। किसी भी शब्द या वाक्य के सामान्य सपाट और अभिधामूलक अभिव्यक्ति में न तो पर्याप्त गहराई होती है न प्रभाविष्णुता और न अधिक सौंदर्य। मुहावरे और लोकोक्ति का विलक्षण अर्थ होता है। इसके प्रयोग से भाषा में सरलता, सरसता, चमत्कार तथा प्रवाह उत्पन्न होते हैं।

---

[1] रीता रानी पालीवाल : अनुवाद प्रक्रिया एवं परिदृश्य, 2004, पृ .74

[2] नीता गुप्ता(सं.) : अनुवाद-शतक विशेषांक ,(अंक -100-101),जुलाई-सितम्बर1999, पृ.- 23

मुहावरे के अनुवादक की समस्याएँ

ऐसे वाक्यांश जो सामान्य अर्थ का बोध न कराकर विलक्षण अर्थ की प्रतीति कराये, मुहावरा कहलाता है। मुहावरे की विशेषता है कि इसका प्रयोग वाक्य के संदर्भ में किया जाता है। मुहावरा अपना असली रूप कभी नहीं बदलता, अर्थात उसे पर्यायवाची शब्दों में अनूदित नहीं किया जा सकता। इसके शब्दार्थ नहीं, बल्कि उसका अवबोधक अर्थ ही ग्रहण किए जाते हैं जो प्रसंगानुकूल होते हैं। यह भाषा की समृद्धि और सभ्यता के विकास के मापक है। इनकी अधिकता और न्यूनता से भाषा के बोलने वालो का श्रम, सामाजिक संबंध, औद्योगिक स्थिति, भाषा निर्माण की शक्ति, सांस्कृतिक मान्यताएँ, अध्ययन- मनन और आमोदक भाव इत्यादि का एक साथ पता चलता है।

किसी भी सृजनात्मक साहित्य का अनुवाद करते समय अनुवादक से मुहावरे का अनुवाद मुहावरे में करने की अपेक्षा होती है,ताकि मूल भाषा के अर्थ की विलक्षणता सुरक्षित रहे, वशर्ते अर्थ की हानि न हो। यदि अनुवादक की दोनों भाषा का ज्ञान गहन है तो वह यथा संभव लक्ष्य भाषा में भी समतुल्य मुहावरे को ढूँढ लेगा। अनुवाद करते समय अनुवादक को यह कोशिश करनी चाहिए कि स्रोत भाषा के मुहावरे से बिल्कुल मिलता-जुलता मुहावरा लक्ष्य भाषा में खोज लिया जाय। लेकिन बहुत बार बिल्कुल समान मुहावरा मिलना संभव नहीं होता। एक अनुवादक को लक्ष्य भाषा में समतुल्य मुहावरे खोजना चाहिए, जो मूल अर्थ को धारण करता है। इसलिए अनुवादक को दोनों भाषाओं पर समान रूप से अधिकार होना चाहिए। कुछ समतुल्य मुहावरे का अनुवाद देखे जा सकते हैं, जो निम्न है-(1) "To throw dust in the eye"- आँखों में धूल झोकना[1] (2)"Play with Fire-आग से खेलना[2](3)"To play ones Cords wear- सही पत्ते चलना[1] (4) "Double Dealing- दुरंगा व्यवहार[2]

---

[1] भोलानाथ तिवारी : अंग्रेजी-हिन्दी मुहावरा लोकोक्ति-कोश, 2006, पृ. 448

[2] वही , पृ . 338

अंग्रेजी के बहुत सारे मुहावरे का हिंदी में अनुवाद का कारण यह हैं कि अंग्रेजों ने हमारे देश में बहुत दिनों तक शासन किया। उनकी भाषा का प्रभाव हमारी भाषाओं पर होना स्वाभाविक ही है। समान मुहावरे की जिद्द छोड़कर समानार्थी मुहावरा ढूँढने की कोशिश करनी चाहिए। इस तरह का मुहावरा मिल भी जाता है तो कई बार स्रोत भाषा तथा लक्ष्य भाषा में मुहावरे के संदर्भ अलग-अलग होते हैं और अर्थ की क्षति होने की संभावना होती है। अत: अनुवादक का प्रयास यह रहना चाहिए की संदर्भ की रक्षा करें।

मुहावरे की अपनी सामाजिक सांस्कृतिक विशेषताएँ होती है। जिसको सुरक्षित करना अनिवार्य होते हैं। संपूर्ण मानव जाति की भावनाएँ एक जैसी होती है। भिन्न भावनात्मक परिस्थितियों में ये कम या अधिक हो सकते हैं। अपने अपने भावनात्मक विचारों की अभिव्यक्ति का भाषिक माध्यम अलग-अलग होते हैं। इसलिए एक जैसी भावना या विचारों को व्यक्त करने के लिए भिन्न भाषिक मुहावरे होते हैं। एक अनुवादक के लिए मुख्य समस्या लक्ष्य भाषा में उसे खोजने की है। इसलिए उसे स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा की गहन जानकारी समान मुहावरा मिलना संभव नहीं होता। अतः मुहावरों के अनुवाद के निम्न उपाय किए जा सकते हैं ।

मुहावरों के अनुवाद की समस्याओं को दृष्टि में रखते हुए जी. गोपीनाथन ने निम्नलिखित सैद्धांतिक आधार को रेखांकित किया है - "(1) जहाँ लक्ष्य भाषा में स्रोत भाषा के मुहावरे के लिए समान मुहावरा मिलता हो ,वहाँ पर अनुवादक अपना सकता है । (2) जहाँ पूर्ण रूप से समान मुहावरा न मिले , वहाँ पर अर्थ की दृष्टि से लगभग समान मुहावरे से प्रतिस्थापन किया जा सकता है। (3) कुछ मुहावरे का शब्दानुवाद अनुवाद भी करना होता है । इससे अनुवाद में सांस्कृतिक वैशिष्ट्य तथा स्थानीयता का रंग लाया जा सकता है। ऐसा करते समय भी ध्यान रखना चाहिए की मूल अर्थ का सम्यक अंतरण हो।

---

[1] भोलानाथ तिवारी : अंग्रेजी-हिन्दी मुहावरा लोकोक्ति-कोश, 2006, पृ . 338

[2] वही, पृ . 338

(4) जहाँ पर शब्दानुवाद से अर्थ सम्प्रेषण में कठिनाई हो, वहाँ पर भावानुवाद कि प्रणाली अपना सकते हैं । ऐसे मुहावरे अक्सर अंतः केन्द्रित होते हैं , उन्हे बाहर केन्द्रित बनाना चाहिए अर्थात, उन्हें सरल ढंग से समझाना होता है। जहाँ पर मुहावरों में भ्रामक अनुरूपता हो ,वहाँ भी भावानुवाद करना चाहिए। (5) स्रोत भाषा में यदि तीसरी भाषा (अँग्रेजी आदि) से आगत अनूदित मुहावरा आता हो और उनके लिए लक्ष्य भाषा में पहले से प्रचलित कोई आगत अनुवाद मिलता हो, तो उसे अनुवादक अपना सकते हैं, यदि कोई आगत अनुवाद पहले से प्रचलित नहीं हो तो लक्ष्य भाषा में स्रोत भाषा के समान आगत अनुवाद 'चला' सकते हैं।"[1]

उपर्यक्त विवेचन से स्पष्ट है कि मुहावरों का अनुवाद सरल नहीं होता है। लेकिन प्रयत्न करने पर अनुवादक लक्ष्य भाषा के अनुरूप प्रचलित मुहावरे का चयन करके मूल पाठ के मुहावरों से उत्पन्न प्रभावशाली या विलक्षणता को सृजित कर सकता है। मुहावरे का प्रचलन हिंदी, अंग्रेजी या अन्य भाषाओं में पर्याप्त मात्रा में है।

लोकोक्तियों के अनुवादक की समस्याएँ

लोकोक्ति का अंग्रेजी 'proverb' होता है। हिंदी में लोकोक्तियों के लिए कहावत शब्द भी प्रचलित है। इसके पीछे कोई लोक प्रचलित उक्ति या कथन छिपा होता है। कई बार महान व्यक्तियों या पात्रों के द्वारा कही गई बात भी लोकोक्ति बन जाती है। लोकोक्ति में वैयक्तिकता की अपेक्षा सामाजिकता अधिक मात्रा में होती है। यह सामाजिक अनुभवों का निचोड होता है। इसका प्रयोग भाषा में किसी विचार को प्रभावी ढंग से व्यक्त करने के लिए होता है। कहावतें समाज में पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होते रहते हैं। पुराण-कथा, लोक-कथा आदि से भी कहावतें उत्पन्न होती है।

---

[1] जी . गोपीनाथन :अनुवाद सिद्धांत एवं प्रयोग ,2008 ,पृ-72

लोकोक्तियों का अनुवाद बहुत ही दुरूह कार्य माना जाता है। भोलानाथ तिवारी लोकोक्तियों के अनुवाद की कठिनता को रेखांकित करते हुए लिखते हैं कि "लोकोक्तियाँ प्राय: सभी भाषाओं में अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम होती हैं किंतु वे अभिव्यंजना की दृष्टि से जितनी ही सशक्त होती हैं, कुछ थोड़े अपवादों को छोड़कर अनुवाद करने की दृष्टि से उतना ही अधिक कठिन होता है।"[1] सजातीय भाषा में बहुत सीमा तक संभव है क्योंकि दो भाषा समाजों की सांस्कृतिक रीति-रिवाज की समानता होती है। किंतु दो विजातीय भाषा की सामाजिक सांस्कृतिक परिवेश की भिन्नता के साथ-साथ भाषा परिवार भी अलग रहता है। उसमें प्रचलित कथा, पौराणिक कथा, मिथक, प्रतीक का अपना विशिष्ट अर्थ होता है। लोकोक्ति उक्त तत्वों से संदर्भित होती है। इसलिए इसका अनुवाद कठिन है। इस संबंध में भारती गोरे का कथन है।"प्रतीकों की भिन्नता लोकोक्तियों के अनुवाद में कठिनाई उपस्थित करती है। प्रतीक एक ऐसी चीज है जो दो भिन्न समाज तथा संस्कृति के समान रूप से नहीं मिलती लोकोक्तियां तो प्रतीकों से भर पूर होती हैं। इन प्रतीकों का अनुवाद संभव नहीं होता।"[2]

लोकोक्ति के अनुवाद के संदर्भ में रीतारानी पालीवाल का कथन है, "लोकोक्तियों में सांस्कृतिक ऐतिहासिक संदर्भ का पूरा लोक-रहस्य अंतर्निहित होता है। इसलिए उनके अभिव्यंजन शब्द विशिष्ट अर्थ संदर्भी के वाहक होते हैं। वे सामान्य भाषा की सरल उक्तियाँ नहीं होती, बल्कि लोकानुभव की ऐसी व्यंजनयमयी उक्तियाँ होती हैं जिनका अनुवाद बड़ा ही कठिन पड़ता है। ...हर भाषा की लोकोक्तियाँ, नवीन उपमाओं और नवीन भावों की निजता में एक विशिष्ट ढंग की प्रतिभा का संकेत देती है। अत: लोकोक्तियों का अनुवाद करते समय दोनों भाषाओं के स्रोतों को भली-भाँति समझ लेना चाहिए। शब्दश: अनुवाद करने का प्रयास अधिकतर असफल हो जाता है। मूल कहावत के अलंकार और तुकबंदीगत आग्रहों को ज्यों का त्यों दूसरी भाषा में लाने में

---

[1] भोलानाथ तिवारी : अनुवाद विज्ञान, पृ-102

[2] भारती गोरे : अनुवाद निरूपण, पृ॰-263

अनुवाद असमर्थ रहता है।"[1] उपर्युक्त कथनों से स्पष्ट है कि प्रत्येक भाषा की लोकोक्तियों की ऐतिहासिक, पौराणिक, सामाजिक, सांस्कृतिक लोक रहस्यात्मक तथा भाषिक संदर्भ होते हैं, जिसका अनुवाद बहुत ही कठिन है। इसके शब्दश: अनुवाद असफल हो जाते हैं।

सामान्यतः लोकोक्तियों के भाषातंर की प्रमुख चार समस्याओं पर विचार किया जा सकता है- 1.देश कालगत समस्या 2. भाषागत समस्या 3. तुक साम्यगत समस्या 4. पदक्रम की समस्या।

1. देशकालगत समस्या

इसे परिवेशगत समस्या भी कह सकते है। सांस्कृतिक-परिवेश भिन्नता के कारण लोकोक्ति का अनुवाद कठिन हो जाता है। इसका कारण है एक योग्य एवं अनुभवी अनुवादक का अभाव तथा जब दो विरोधी सभ्यता संस्कृति का होना है। जयनारायण वर्मा संतोषी लिखते हैं - "कालगत समस्या से अभिप्राय है कि लोकोक्तियाँ भूतकालिक क्रिया के कृदंतों से युक्त होती हैं पर जब उनका भाषांतर किया जाता है तो उसमें वर्तमान कालिक क्रिया को प्रयुक्त करना ही श्रेष्ठ भाषांतर की उपलब्धि होती है।"[2]

2. भावगत समस्या

अर्थ की दृष्टि से लोकोक्तियाँ तीन प्रकार की होती हैं-1. अभिधामूलक लोकोक्तियाँ ,2. लक्षणमूलक लोकोक्तियाँ 3. व्यंजनामूलक लोकोक्तियाँ। जयनारायण वर्मा संतोषी अभिधामूलक लोकोक्तियाँ के भाषांतर के संदर्भ में कहते हैं "कुछ लोकोक्तियाँ ऐसी है जिनमें सीधा-सादा अभिधार्थ ही प्रमुख होता है। ऐसी लोकोक्ति के भाषांतर में तो शब्दान्तर करना चाहिए पर अभिधार्थ को

---

[1] रीता रानी पालीवाल : अनुवाद प्रक्रिया एवं परिदृश्य, 2004, पृ .95

[2] नीता गुप्ता(सं.) : अनुवाद-शतक विशेषांक, (अंक 100-101), जुलाई-सितम्बर1999, पृ-218

भली-भाँति समझना है।"[1] उन्होने आगे लक्षण और व्यंजनामूलक लोकोक्तियों के संदर्भ में लिखा है कि, "ऐसी लोकोक्तियों की भाव-गरिमा तक पहुँचने तक कुशल भाषांतरकार के सामर्थ्य से भी बाहर होता है। इस समस्या को प्राय: उन लोकोक्तियों, में देखा जाता है, जहाँ किसी जाति-विशेष की हीनता अथवा महानता को दिखाने के लिए चुभता अथवा तिलमिलाने वाला व्यंग्यार्थ निहित होता है।"[2]

3. तुक साम्यगत समस्या

लोकोक्तियों में तुक, लय, अनुप्रास , आदि मध्य, अंत में विशेष रूप से होता है। जिसे स्मरण रखना संभव होता है। नाद सौंदर्य भी लोकोक्तियों के प्रभावशीलता को बढ़ा देता है। अनूदित कृति में उक्त तत्वों को सुरक्षित रखना चुनौती होता है।

4. पद क्रम की समस्या

यह आवश्यक नहीं होता है कि लोकोक्तियों के पदक्रम व्याकरणिक संरचना के अनुरूप हो। सभी भाषाओं की संरचना भी एक समान नहीं होती। संयोगात्मक भाषाओं के पद क्रम से वियोगात्मक भाषाओं के पदक्रम भिन्न होता है। यदि अनुवादक विवेक से काम ले तो पद क्रम हल का ढूँढ सकता है।

जी. गोपीनाथन ने लोकोक्तियों के अनुवाद के संदर्भ में निम्नलिखित व्याहारिक सिद्धांत दिया है - “(1)जहाँ लक्ष्य भाषा में हु बहु सामान लोकोक्ति मिले, वहाँ अनुवादक उसे अपना सकता है . (२)कुछ लोकोक्तियाँ ऐसी हैं जिनमें थोडे से अंतर से शब्द वही हैं, उन्हें भी अनुवादक को अपनाना चाहिए । (3) कुछ लोकोक्तियाँ ऐसी हैं जिनमेंशब्दों का अंतर होता है । (4)कुछ लोकोक्तियों के लिए सामान लोकोक्तियाँ लक्ष्य भाषा में नहीं मिलेंगी, लेकिन शब्दानुवाद करके अनुवादक उन्हें ‘चला’ सकेंगे।जहाँ स्रोत भाषा की संस्कृति विशिष्टताओं को

---

[1] नीता गुप्ता(सं.) : अनुवाद-शतक विशेषांक, (अंक 100-101),जुलाई-सितम्बर1999, पृ- 219

[2] वही - पृ 219

लक्ष्य भाषा में उतारना होता है तो ये शब्दानुवाद उपयोगी होंगे । शब्दानुवाद में कुछ स्थलों पर अतिरिक्त सूचनाएं भी देनी होंगी। (5)कुछ ऐसी लोकोक्तियाँ भी होती हैं, जिनका शब्दानुवाद करने पर कुछ भी अर्थ ध्वनित होता। ऐसी लोकोक्तियों का भावानुवाद करना ही उचित होता है। (6) स्रोत भाषा के किसी तीसरी भाषा से आगत अनूदित लोकोक्तियाँ हों,तो उनका लक्ष्य भाषा में प्रचलित आगत अनुवाद से मूल के अनुरूप नए आगत अनुवाद से प्रतिस्थापन करना चाहिए।"[1]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि लोकोक्तियों के अनुवाद के लिए अनुवादक को स्रोत एवं लक्ष्य भाषा के समान संस्कृति रीति -रिवाज, लोक तथा उसके पौराणिक तत्वों की जानकारी होनी चाहिए। अनुवादक के लिए यह श्रम-साध्य कार्य है। अनुवादक को समतुल्य लोकोक्ति ढूँढ़कर अर्थ की अभिव्यक्ति अर्थ एवं शैली के स्तर पर करनी होती है अथवा इस विकल्प के अभाव में उसके पास भावानुवाद के सिवाय और कोई चारा नहीं होता तथा लोकोक्तियों का अनुवाद करना कठिन कार्य हो जाता है।

इस तरह स्पष्ट है कि काव्यनुवाद भी एक सर्जनतमक अभिव्यक्ति है, जिसमें मूल रचना के भाव और अभिव्यक्ति सौन्दर्य को लक्ष्य भाषा में यथासंभव सुरक्षित रखने का प्रयत्न किया जाता है । काव्यानुवाद के दौरान अनुवादक को कई स्तरों पर समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इसमें स्रोत एवं लक्ष्य भाषा कि प्रकृति ,अनुवादक की अपनी समझ, मूल कविता की वैशिष्ट्य आदि स्तरों पर समस्याएँ आती है। किसी पाठ का अनुवाद के बाद उसके गुण-दोषों की जांच के लिए कई प्रविधियों का विकास हुया, किन्तु सभी की अपनी सीमाएं है। किसी भी प्रविधि को पूर्ण रूप से वस्तुनिष्ठ और प्रामाणिक नहीं कहा जा सकता है। अनूदित रचना में उत्कृष्ट अनुवाद कसौटी को आधार बनाया जा सकता है।

---

[1] जी. गोपीनाथन : अनुवाद सिद्धांत एवं प्रयोग ,2008, पृ-73

अगले अध्याय के अंतर्गत कबीर के काव्य की विशेषताओं का विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है।

1.2 अनुवाद मूल्यांकन

अनुवाद मूल्यांकन मूल पाठ से अनूदित पाठ में अभिव्यक्त, अनुवाद के कौशल को जाँचने परखने की कार्य-प्रविधि है। यदि मूल्यांकन किसी साहित्यिक रचना का किया जा रहा है तो यह पता लगाया जाता है कि मूलकृति का संदेश अनुवाद में किस हद तक वहन हुआ है। अनुवाद की प्रक्रिया में अनुवाद में क्या छोड़ा है और क्या जोड़ा गया है। क्या कृतिकार के संदेश के अतिरिक्त कोई और संदेश भी अनुवाद वहन कर रहा है? यदि हाँ तो वह क्या है? अनुवाद की पुनः सृजन- प्रक्रिया के दौरान क्या भाषा और भाव के स्तर पर कोई नवीन उद्भावना हुई है। यदि हुई है तो वह किस कारण हुई है? अनुवाद की अपनी मनोभूमि के कारण,मूल रचना और अनुवाद के बीच देश, काल के अंतर के कारण भाषा-शैली के स्तर पर भी मूल और अनुवाद की तुलना करते हुए अनूदित पाठ की जाँच की जाती है। वस्तुतः अनुवाद मूल्यांकन के द्वारा यह भी निर्धारित होता है, कि तमाम अनूदित कृतियों में कौन सी अनूदित कृति मूल कृति के समतुल्य हो पायी है अनुवाद मूल्यांकन अनूदित कृति को अन्य अनूदित कृतियों के मध्य प्रतिष्ठित भी करता है कि नहीं? इसमें अनुवाद के गुण-दोष सफलता -असफलता की जाँच की जाती है ।

प्रो. कृष्ण कुमार गोस्वामी के अनुसार-"वास्वव में अनुवाद का मूल्यांकन अनुवाद कौशल का मूल्यांकन है। इसमें मूल पाठ के परिप्रेक्ष्य में अनूदित पाठ के गुण-दोषों का विवेचन होता है। यह विवेचन अनुवाद कार्य की निष्पति से है जो अनुवाद संशोधन और स्तर के संवर्धन में सहायक होता है। इस प्रकार मूल्य पाठ की पुनर्रचना का परीक्षण अनुवाद मूल्यांकन है जिसमें भाषायी इकाइयों के संयोजन और सृजन में निहित गुण-दोषों की जानकारी

मिलती है"[1]। अतः अनुवाद मूलयांकन में मूल पाठ के संदर्भ में अनूदित पाठ के गुण-दोषों का विवेचन किया जाता है ।

डॉ. सुरेश कुमार के अनुसार "पाठीय अभिव्यक्ति के तीन क्रमिक चरण हैं साहित्यिक कृति→कृति का अनुवाद→अनुवाद का मूल्यांकन। साहित्यिक कृति एक भाषा पाठ है और साहित्य पाठ भी है। मूल की तुलना में यह व्युत्पन्न द्वितीयक वस्तु है यह अनूदित लक्ष्य भाषा में पुनराभिव्यक्त है। अनुवाद का मूल्यांकन एक भाषा पाठ होने के साथ (साहित्य पाठ से भिन्न) समीक्षा पाठ भी है। उपर्युक्त दोनों से भिन्न परन्तु दोनों के संबंध का परीक्षण मूल्यांकन करने वाली तृतीयक वस्तु है यह पाठ का पाठ आधारित (निरूपक पाठ) है।"[2]

कहने का आशय है कि अनुवाद मूल्यांकन साहित्यिक कृति के मूल्यांकन, परीक्षण के संदर्भ में तृतीयक वस्तु है जिससे भाषा पाठ की समीक्षा की जाती है।

अतः स्पष्ट है कि अनुवाद मूल्यांकन में प्रमुख रूप से मूल और अनूदित पाठ की तुलना में उस अनूदित पाठ के गुण-दोषों का विवेचन किया जाता है,जिसमें अनुवाद सिद्धांत की मान्यताओं का अनुपालन किया जाता है।

डॉ. सुरेश कुमार ने अपने त्रि-चरण प्रतिरूप के आधार पर दो बातें स्पष्ट की "(क) साहित्यानुवाद के मूल्यांकन का प्रारूप भाषा सिद्धांत, अनुवाद सिद्धांत और साहित्य समीक्षा की अन्योन्यात्मक का फलित (प्रोडक्ट) है। (ख) इसकी दो धाराएँ है: भाषा-सिद्धांत प्रधान अनुवाद मूल्यांकन प्रारूप। पहले में भाषा-विश्लेषण (भाषा संरचना विश्लेषण, भाषा प्रयोग विश्लेषण) की प्रधानता है और यह अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान की सामान्य प्रवृत्ति दोनों प्रवृत्यिों है। दूसरे में साहित्य समीक्षा की प्रभाववादिता की प्रधानता है, और यह साहित्य-समीक्षा

---

[1] कृष्ण कुमार गोस्वामी : अनुवाद विज्ञान की भूमिका, 2008, पृ-93

[2] डॉ. सुरेश कुमार: अनुवाद सिद्धांत की रूपरेखा, 2005, पृ.-16

मूल्यांकन की प्रचलित प्रवृत्ति है। भाषा सिद्धांत प्रधान और साहित्य समीक्षा प्रधान , दोनों प्रवृत्तियों की अपनी-अपनी परम्परा है। भाषा विश्लेषक अनुवाद संबंध संदर्भित पाठों (मूलपाठ तथा अनूदित पाठ के विविध आयामों (संरचनागत, अर्थगत, शैलीगत, संप्रेषणपरक के विषय में सार्थक जानकारी प्राप्त करते हुए अनूद्यता का आकलन करते हैं। साहित्य-समीक्षा दोनों पाठों की तुलना करते हुए प्रभाववादी आधार पर अनूदित पाठ की संप्रेषण स्तरीय साहित्यिक-सांस्कृतिक सफलता का मूल्यांकन करते हैं।"[1]

इस विवेचन से स्पष्ट होता है कि साहित्य के मूल्यांकन का प्रारूप अनुवाद सिद्धांत और साहित्य समीक्षा का अन्योन्यात्मक प्रारूप है जिसमें मूल्यांकन, भाषा प्रारूप और प्रधान-प्रारूप के अन्तर्गत होता है और मूल पाठ के प्रभाव के आधार संप्रेषण स्तर पर साहित्यिक-सांस्कृतिक सफलता का मूल्यांकन किया जाता है।

1.3 अनुवाद-मूल्यांकन : प्रकार

सामान्यतः अनुवाद के तीन प्रकार माने जाते हैं - (1) पाठधर्मी मूल्यांकन, (2) प्रभावधर्मी मूल्यांकन, (3) व्यवहारवादी मूल्यांकन ।

(1) **पाठधर्मी मूल्यांकन**- पाठधर्मी मूल्यांकन में मूल पाठ को आधार बनाया जाता है। इसमे अनुवादक को मूल पाठ से दूर जाने की छूट नहीं होती है। पाठधर्मी मूल्यांकन में मूल पाठ को कसौटी बनाया जाता है। इसमें मूल पाठ की प्रकृति और प्रयोजनशीलता की आधार बनाकर अनुवाद किया जाता है । अनुवाद में मूलनिष्ठता बनाने के लिए अनुवादक सर्वप्रथम मूल पाठ की भाषा का अध्ययन तथा विश्लेषण करता है और उसमें अंतर्भूत अर्थ को लक्ष्य पाठ में उतारने के लिए मूल पाठ की संरचना तथा बुनावट के स्तरों को केंद्र में रखता है।

---

[1] डॉ. सुरेश कुमार, अनुवाद : सिद्धांत की रूपरेखा ,2005, पृ.-163

(2) प्रभाववादी मूल्यांकन - प्रभाववादी मूल्यांकन में अनूदित पाठ के प्रभाव को मापा जाता है। इसमें अनुवाद मूल्यांकन करने वाला लक्ष्य भाषा के पाठक के मन पर पड़े प्रभाव को आँकते हैं। प्रभाववादी मूल्यांकन में अनूदित पाठ की प्रभावोत्पादकता आंकी जाती है। इसमें अनूदित पाठ लक्ष्य -भाषा में वही प्रभाव उत्पन्न करता है जो स्रोत भाषा में मूल पाठ करता है। प्रभाववादी मूल्यांकन में समीक्षक या मूल्यांकन की प्रतिक्रिया एक 'विशेषज्ञ पाठक' के रूप में व्यक्त होती है ।

(3) **व्यवहारवादी मूल्यांकन -** इस मूल्यांकन में संभावित प्रतिक्रिया के आधार पर अनुवाद का आकलन किया जाता है। पुनरानुवाद आधारित मूल्यांकन और अनुक्रिया आधारित मूल्यांकन इसकी पद्धतियां है ।

1.4. अनुवाद-मूल्यांकन : प्रविधि

अनुवाद मूल्यांकन की अनेक प्रविधियाँ अपनायी गयी हैं ताकि अच्छे अनुवाद की पहचान कर सके। इनमें मुख्य प्रविधियों का विवरण नीचे दिया जा रहा है-

1.4.1 अनुक्रिया पर आधारित अनुवाद-मूल्यांकन

पाठक द्वारा अनूदित पाठ के पढ़ने के उपरान्त पाठक जो अनुक्रिया करता है। उसे पाठ प्रकार्य या अनुक्रिया पर आधारित मूल्यांकन कहते हैं। जिसे अनुक्रिया पर आधारित मनोभाषा वैज्ञानिक मूल्यांकन में मापा जाता है। इसमें इस बात पर अवश्य ध्यान दिया जाता है कि अनूदित पाठ वही भूमिका निभाएँ जो मूल पाठ निभाता है। किन्तु "अनुवाद की अनुक्रिया प्रत्येक भाषा-भाषी की समसामयिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक परिस्थितियों पर निर्भर करती है। भाषायी दृष्टि से अनुवाद समतुल्यता के आधार पर सही चयन करने

में सफल तो हो सकता है किन्तु भूमिका निर्वाह की पूर्ण समतुल्यता लाना संभव नहीं है।"[1]

फास्टर, नाइडा, तथा टेबलर ने इन्हीं आधारों को अनुवाद मूल्यांकन के लिए आवश्यक माना फास्टर ने इस संबंध में एक मानदण्ड निर्धारित किया कि अच्छे अनुवाद को वहीं भूमिका निभानी चाहिए जो मूल कृति निभाती है। डॉ. प्रतिभा पाठक ने नाइडा के मूल्यांकन संबंधी चिंतन को प्रस्तुत करते हुये लिखा है कि - "अच्छे अनुवाद मूल्यांकन के लिए नाइडा (1964) ने तीन आधार सुझाएँ हैं-

"(1) संप्रेषण प्रक्रिया की सहजता - पाठक या गृहीता कम से कम श्रम के साथ अधिक से अधिक ग्रहण कर पाए। यह गुण जिस अनुवाद में होगा वही अच्छा अनुवाद होगा।

(2) कथ्य का बोधन - मूल कृति के सामाजिक, सांस्कृतिक एवं पाठगत कथ्यों का अनुवाद पाठक, भाषा के माध्यम से सहज ही ग्रहण कर लें।

(3) अनुक्रिया की समतुल्यता - अच्छा अनुवाद वह है जहाँ जो मूल कृति के प्रति थी।"[2]

नाइडा के उक्त आधार व्यवहारिक नहीं है क्योंकि अनुक्रिया को मापने के प्रामाणिक साधन का अभाव है । अतः नाइडा ने टेबर (1969) के साथ मूल्यांकन के इन आधारों में सुधार कर अन्य आधार बताएं हैं- (1) संदेश का सहज में संप्रेषण (2) पठनीयता द्वारा बोधन (3) अनुवाद की पर्याप्तता एवं पाठक की अभिरूचि। मूल्यांकन के ये आधार भी बहुत प्रभावी न हो सके। अतएव नाइडा और टेबर ने अपने मतों कुछ संसोधन करके अनुक्रिया आधारित

---

[1] नीता गुप्ता(संपा.): अनुवाद : मूल्यांकन, 2002, पृ.-7

[2] वही, पृ.-21

मूल्यांकन के अतिरिक्त आधार बताये जो निम्न है। प्रतिभा पाठक ने नाइडा और टेबर के द्वारा संशोधित आधारों को सदर्भित किया है -"1.क्लोज परीक्षण (close testing) 2. बोधन/अनुक्रिया ज्ञापन 3. अनुवाद पाठन 4. उत्तम अनुवाद से तुलना"[1]

(1) **क्लोज परीक्षण**

"क्लोज़ परीक्षण में पाठक को लिखित पाठ्य सामग्री उपलब्ध करा दी जाती है , जिसमें प्रत्येक पाँचवाँ शब्द हटाकर खाली रखा जाता है और फिर पाठक से भरने के लिए कहा जाता है जो सन्दर्भ में सर्वोतम हो।"[2] इस पद्धति से अनुवाद की बोधगम्यता हो जाटी है लेकिन इसकी सीमाएँ ये है कि मूल पाठ से संपर्क नहीं हो पाने पर यह एकपक्षीय रह जाता है और सिद्ध नहीं कर पाता है कि वह स्वयं में कितना अच्छा है।

(2) बोधन/अनुक्रिया ज्ञापन

अनुवाद के विभिन्न रूपों के प्रति अनुक्रिया व्यक्त करने की सुविधा अलग-अलग पाठकों को प्रदान की जाती है और यह निर्धारित किया जाता है कि कौन अनुवाद सुनने में मधुर है? कौन अनुवाद पठनीय है? कौन सा अनुवाद समझने में आसान है? इसकी भी कुछ सीमाएँ है। डॉ. प्रतिभा पाठक के अनुसार- "क्लोज परीक्षण के उपरांत पाए जाने वाले आधार पर विश्लेषण नहीं किया जा सकता। इस जाँच से अधिक अनुवादों में तुलना की जा सकती है। पर मूल कृति की तुलना में अनुवाद की जाँच असंभव है। अनेक अनुवादों में परस्पर

---

[1]नीता गुप्ता(संपा.) : अनुवाद : मूल्यांकन, 2002 , पृ.-22

[2] In its written application the Close Technique provides the reader with a text in which every fifth words is deleted and a blank spaceis left in its place . the reader is then asked to fill in those words which seem to fit the context best - Eugene A Nida and Charles R Taber :The Theory and Practice of Translation ,1969,page-169

जो गुणात्मक अन्तर है उसकी जाँच परीक्षण के इस प्रकार के सामान्य प्रश्नों से नहीं की जा सकती।"[1]

(3) अनुवाद पाठन

अनूदित कृति एक पाठक को दी जाती है और उससे कहा जाता है कि वह उसे पढ़कर उसमें निहित सूचनाएँ अन्य लोगों तक पहुँचाए। इस प्रकार अन्य लोग अनुवाद से जितनी अधिक सूचनाएँ प्राप्त करेंगे, उतना ही अच्छा अनुवाद होता है। इसकी सीमा यह है कि ''यह परीक्षण सैद्धांतिक स्तर तक ही सही है। व्यवहारिकता में यह एक लम्बी प्रक्रिया का रूप धारण कर लेना है। यह परीक्षण अनुवाद पर आधारित न होकर पूर्णतः उस व्यक्ति पर निर्भर करता है जिससे अनुवाद के बारे में पूछा जाता है। अनुवाद के विभिन्न शैलीगत रूपों का पता नहीं चलता है।"[2]

(4) उत्तम अनुवाद से तुलना

इस मूल्यांकन पद्धति के अनुसार कृति का उत्तम अनूदित कृति से तुलना की जाती है। जिसमें अनूदित पाठ को यदि ऊँचे स्वर में पढ़े तो अनुवाद में कई कमियाँ स्पष्ट हो जाती है और फिर श्रोताओं की इस पर राय ली जाती है। सभी श्रोताओं की राय में भिन्नता आ जाती है।

उपर्युक्त मूल्यांकन प्रविधियों के विवेचन से स्पष्ट है कि मूल्यांकन की यह प्रविधि मूल्यांकन की व्यक्तिनिष्ठ दृष्टिकोण से संबंधित है जबकि मूल्यांकन के लिए दृष्टिकोण वस्तुनिष्ठ प्रधान होना चाहिए। इन प्रविधियों में केवल अनूदित पाठ का ही विवेचन होता है। मूलपाठ से इसका कोई तालमेल नहीं है तथा बोधगम्यता की मात्रा को ही इस प्रविधि में आधार बनाया जाता है,

---

[1] डॉ. नीता गुप्ता, (संपा.) अनुवाद : मूल्यांकन,2002 , पृ.-22

[2] डॉ. नीता गुप्ता, (संपा.) अनुवाद : मूल्यांकन,2002 , पृ.-22

जबकि यह आधार मूल्यांकन के लिए पर्याप्त नहीं है।इसमें अनूदित कृति की गुणवत्ता की जाँच नहीं हो पाती है।

1.4.2 पुनरनुवाद आधारित अनुवाद-मूल्यांकन

इस पद्धति के अनुसार मूल पाठ के अनुवाद का स्रोत भाषा में पुनः अनुवाद किया जाता है। इसमें अनुवादक और पुनरनुवादक अलग-अलग व्यक्ति होते हैं। पुनरनुवादित पाठ की तुलना मूल पाठ से की जाती है। इसमें त्रुटियों को पहचाना जाता है और उनका संशोधन किया जाता है। इस पद्धति से अनुवाद की शुद्धता और यथातथ्यता की जाँचकर अनुवाद की सफलता को मापा जा सकता है। यह पद्धति भाषापरक त्रुटियों के लिए उपयोगी तो है किन्तु सामाजिक-सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों के परिप्रेक्ष्य मे अधिक कारगर सिद्ध नहीं होती। मूलपाठ में जो सांस्कृतिक अभिव्यक्ति होती है, यह आवश्यक नहीं है कि वह अनूदित पाठ में बोधगम्य और संप्रेषणीय बन सके।

1.4.3 मूलपाठ पर आधारित अनुवाद-मूल्यांकन

विल्स (1974), राउस तथा व्यूलर ने मूलपाठ आधारित मूल्यांकन पर बल दिया और बताया कि अनुवाद मूल्यांकन विशिष्ट संदर्भ में उस भाषा के बोलने वालो के सामान्य मानक प्रयोग पर आधारित होना चाहिए । “अनुवादक के पास कई मानक विकल्प के रूप में उपलब्ध होते हैं। भाषिक प्रक्रिया होने के नाते अनुवाद एक सर्जनात्मक प्रक्रिया भी है और स्थिति जन्य अर्थ के प्रतिपादन के लिए अनुवादक के पास कई समतुल्य विकल्प रहते है।”[1] डॉ. कुसुम अग्रवाल लिखती है कि “जुलियावा हाउस (1977) का नाम विशेष रूप उल्लेखनीय है। उसने मूलपाठ पर आधारित मूल्यांकन के दो आधारों की चर्चा की है। 1. भाषा प्रयोक्ता और 2. भाषा प्रयोग”[2] उन्होंने मूलपाठ के अध्ययन के

---

[1] डॉ. नीता गुप्ता, (संपा.) अनुवाद- मूल्यांकन ,2002, पृ.-24

[2] डॉ. नीता गुप्ता, (संपा.) अनुवाद- मूल्यांकन ,2002, पृ.-66

लिए अनुवाद प्रक्रिया में एक भाषा से दूसरी भाषा में अन्तरण करते हुए अर्थ कर सुरक्षित रखने पर बल दिया है। जुलियाना हाउस ने अर्थ के तीन पक्ष माना है- "1. कोशगत 2. संदर्भगत 3. पाठगत।"[1]

(क) कोशगत - अर्थ के इस पक्ष में संदर्भ संबंध सम्मिलित है अर्थात् भाषिक प्रतीकों का उनके यथार्थगत संदर्भों से संबंध।

(ख) संदर्भगत - अर्थ का यह पक्ष एक निर्दिष्ट संप्रेषण स्थिति में भाषिक प्रतीकों और उनके प्रयोक्ताओं के संबंध का सूचक है। अर्थात् किसी प्रोक्ति का इस आशय से अध्ययन कि उसका प्रयोग किस प्रयोजन से हुआ है, यानी सामाजिक कार्य-कलाप करते समय वाक्य का संप्रेषणगत प्रयोग। अच्छे अनुवाद मे अर्थगत पक्ष की तुलना में संदर्भगत पक्ष का अधिक महत्त्व है। अनुवाद वस्तुतः मूल पाठ के संदर्भगत पक्ष का पुनर्कथन है।

(ग) पाठगत अर्थ - कैटपोर्ड (1965-1966) ग्लीसन (1968) ने पाठगत अर्थ पर जोर दिया। जहाँ पाठ एक ऐसी आर्थिक रचना की ईकाई है जिसके सभी अंग एक दूसरे से संबद्ध होते हैं। एक पाठ के अर्थ तथा निहितार्थ के धरातल पर समतुल्य पाठ द्वारा प्रतिस्थापना ही अनुवाद माना जाता है।

जुलियान हाउस (1977) का अनुवाद मूल्यांकन प्रारूप- जुलियाना हाऊस ने पाठ प्रकार्य के आधार पर अनुवाद मूल्यांकन के लिए प्रारूप प्रस्तुत किया है। प्रत्येक पाठ मूलतः किसी विशेष स्थिति में बंधकर ही अर्थ व्यक्त करता है। कृष्ण कुमार गोस्वामी ने जुलियाना हाऊस के पाठ प्रकार्य सबंधी मत को सार रूप में प्रस्तुत किया है कि, "जुलियाना हाऊस ने भाषा प्रकार्य और पाठ के प्रकार्य भेद किया है। उनके कथनानुसार किसी पाठ का प्रकार्य इससे निर्धारित होता है कि उस पाठ क प्रयोग किस विशेष संदर्भ में किया गया है। प्रत्येक पाठ

---

[1] कृष्ण कुमार गोस्वामी : अनुवाद विज्ञान की भूमिका ,2008 , पृ.-101

मूलतः किसी विशेष स्थिति से बांध कर ही अर्थवत्ता प्राप्त करता है। इसके अतिरिक्त ,पाठ के प्रकार्य को समझने के किए स्थिति का आधार भी पाठ विश्लेषण में सहायक होता है। इस विश्लेषण के पश्चात अनूदित पाठ में भी वैसा ही विश्लेषण करना अनिवार्य है, जिसमें मूल पाठ और अनुवाद में कितना अंतर है ,यह स्पष्ट किया जा सके।"[1] जुलियाना हाउस ने पाठ के प्रकार्य को समझने के लिए भाषिक तथा भाषेतर आधार पर विश्लेषण के संदर्भ में निम्न प्रारूप तैयार किया है -

अनुवाद मूल्यांकन का प्रारूप

"भाषिक और भाषेतर आधार पर निर्धारण -

भाषिक	**भाषेत्तर**	
क. वाक्य-स्तरीय ख. शब्द स्तरीय ग. पाठ-संबंधी	**भाषा के प्रयोक्ता पर आधारित** क. भौगोलिक उद्भव ख. सामाजिक वर्ग ग. काल -निर्धारण	**भाषा-प्रयोग पर आधारित** क. माध्यम ख. सहभागी ग. सामाजिक संबंध घ. सामाजिक दृष्टिकोण ड. विषय क्षेत्र "[2]

[1] कृष्ण कुमार गोस्वामी : अनुवाद विज्ञान की भूमिका ,2008 वही, पृ-93

[2] नीता गुप्ता, (संपा.) अनुवाद: मूल्यांकन, 2002 पृ.-26

उक्त प्रारूप को निम्न रूप में विश्लेषित किया जाता है -

भाषा प्रयोक्ता पर आधारित आयाम

1.भौगोलिक उद्भव- पाठ की भाषा द्वारा ऐसी स्थिति का पता चल सके जो उसकी भौगोलिक स्थिति व्यक्त करती है।

2.सामाजिक वर्ग- किस प्रकार का वक्ता है और वह किस प्रकार के श्रोता के लिए पाठ लिख रहा है।

3. काल निर्धारण- पाठ किस काल से संबंधित है। इसके बिना मूल पाठ का विश्लेषण संभव नहीं होता।

भाषा प्रयोग पर आधारित आयाम

1. माध्यम- मूल पाठ में भाषा का प्रयोग किस दृष्टि से किया गया है तथा लेखक का तात्पर्य क्या है?

2. सहभागिता- इसमें जटिल भागीदारी के अंतर्गत सहभागित्व ज्ञापन और प्रत्यक्ष भागित्व की अनेक रूपों से मूल पाठ का अध्ययन किया जाता है, जैसे - सर्वनाम, प्रश्नचिह्न आदि।

3. सामाजिक संबंध- इसमें वक्ता और श्रोता के बीच सामाजिक संबंधों का विश्लेषण किया जाता है। इन संबंधों के सम और विषम दो रूप हैं।

4. सामाजिक दृष्टिकोण- सामाजिक दृष्टिकोण में मूलतः शैली आती है और शैलियों का अध्ययन करने से सामाजिक दृष्टिकोण का पता चलता है।

5. विषय क्षेत्र- मूल पाठ किस विषय से संबंधित है अर्थात् वह किस प्रकृति का है वैज्ञानिक, तकनीकी, सौंदर्यपरक, तार्किक अथवा व्यंग्यपरक।

उक्त प्रारूप के विश्लेषण से पता चलता है कि भाषिक स्तर पर शब्द, वाक्य, प्रोक्ति आदि से वर्ण्य-विषय और अंतर-वाक्य सबंधों का पता चलता है तथा पाठ की सामान्य और विशिष्ट गुणों की सूचना मिलती है । भाषेतर स्तर पर भाषा प्रयोक्ता और भाषा प्रयोग दोनों को दृष्टि में रखा जाता है ।इन विश्लेषण के उपरांत मूल और अनुवाद में पाए जाने वाले अंतर को स्पष्ट करने के लिए जुलियाना हाउस परोक्ष और प्रत्यक्ष दोष का निर्धारण किया है । "व्याकरणिक नियमों का उलंघन प्रत्यक्ष दोष है जो हमें विभिन्न आधारों पर पाठ का परिपार्श्व प्रदान करता है। उसके आधार पर पाए जाने वाले दोष परोक्ष दोष है ।"[1]

1.4. अनुवाद मूल्यांकन : सोपान

उपरोक्त विवेचन के आधार पर अनुवाद मूल्यांकन के निम्न सोपानों का उल्लेख किया जा सकता है -

"(क) जुलियाना हाउस द्वारा प्रस्तावित आठ भाषेतर स्थितिजन्य आधारों पर मूलपाठ का विश्लेषण।

(ख) स्थितिजन्य आधार के अनुसार भाषिक आधारों पर निर्धारण। (ग) मूल पाठ की प्रयोगगत विशेष स्थिति की खोज और इस स्थिति के संदर्भ में विशिष्ट अर्थवत्ता को खोज के आधार पर मूल पाठ का मूल्यांकन तथा मूल पाठ के परिप्रेक्ष्य के आधार पर उसके प्रकार्यों का निर्धारण।

(घ) मूल पाठ के तार्किक और अन्तरवैयक्तिक प्रकार्य स्थापित करना। (ड.) अनूदित पाठ का भी मूलवत् विश्लेषण और मूल पाठ के साथ अनूदित पाठ की तुलना। (च) दोनों पाठों के स्थितिजन्य आधारों के अन्तर को परीक्षण दोष मानना।

---

[1] नीता गुप्ता, (संपा.) अनुवाद : मूल्यांकन 2002, पृ.-28

(छ) शेष अन्य को प्रत्यक्ष दोष स्वीकार कर उसका निर्धारण करेंगे।"[1]

सुरेश कुमार ने अनुवाद विभिन्न सोपानों को मूल्यांकन के आयाम मानते हैं ,जो एक- दूसरे को प्रभावित करते हैं- ''वास्तव में मूल्यांकन प्रक्रिया एक अन्विति है जिसमें विभिन्न चरण उसके आयाम है और एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं उनमें अन्यान्यात्मकता होती है।"[2]

उत्कृष्ट अनुवाद के लिए चार गुणों का होना अनिवार्य माना गया है जो उत्कृष्ट अनुवाद के मूल्यांकन की कसौटी भी है-

(क) मूलनिष्ठता (ख) बोधगम्यता (ग) पठनीयता (घ) प्रयोजन सिद्धि।

(क) मूलनिष्ठता - उत्कृष्ट अनुवाद की पहचान की मूलनिष्ठता पहला मापदंड है "अनूदित पाठ में उन सभी सूचना तत्वों का आना आवश्यक है जो मूल पाठ में अभिप्रेत है। यही मूलनिष्ठता है। मूलपाठ के कथ्य या विषय वस्तु का अन्तरण करते हुए उसकी विधा या शैली को भी ध्यान में रखना आवश्यक है।"[3] प्रो. अशोक कालटा के अनुसार "शब्द स्तर पर मूलनिष्ठता परखने के अनुरूप शब्द अनूदित पाठ में है कि नहीं।"[4] इस तरह स्पष्ट है कि मूलनिष्ठता के लिए विधा, शैली, शब्द, वाक्य, प्रोक्ति आदि का ध्यान रखना अनिवार्य है।

(ख) बोधगम्यता और (ग) पठनीयता - बोधगम्यता और पठनीयता एक-दूसरे से जुड़े आयाम है। पठनीयता का संबंध अभिव्यक्ति से है और बोधगम्यता का संदेश से। पठनीयता की एक कसौटी यह भी है अनुवाद अनुवाद न लगे। अच्छे अनुवाद की सबसे बड़ी पहचान यही है। यदि वह अनुवाद स्वाभाविक हो गया तो उसमें काफी मात्रा में बोधगम्यता और संप्रेषणीयता भी होगी।

---

[1] डॉ. सुरेश कुमार, अनुवाद : सिद्धांत की रूपरेखा, 2005, पृ.-179

[2] वही, पृ.-67

[3] नीता गुप्ता (संपा.) : अनुवाद : मूल्यांकन, 2002, पृ.-10

[4] डॉ. गार्गी गुप्त, (संपा.) अनुवाद बोध, 2002, पृ.-109

(घ) प्रयोजनसिद्धि - इसका प्रयोग अनुक्रिया के संबंध में किया जाता है। यदि अनुवाद के समतुल्य अनूदित पाठ सफल होता है तो उस अनूदित पाठ की प्रयोजनसिद्धि होता है। इसमें मूल पाठ के बराबर अनूदित पाठ का प्रभाव अपेक्षित है। उदाहरण के लिए यदि चुटकुले का अनुवाद किया गया है। तो प्रयोजन है पाठक को हँसना। प्रभावोत्पादक भी प्रयोजन सिद्धि के लिए आवश्यक है तथा प्रभावोत्पादकता के लिए सहज भाव और सृजनात्मकता की जरूरत होती है। इसके अतिरिक्त अनुवाद मूल्यांकन में वस्तुनिष्ठता की माँग रहती है।

अतः उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि अनुवाद मूल्यांकन एक जटिल, विवादास्पद और संवेदनशील प्रक्रिया है जिसे व्यवस्थित आधार देने के लिए कई प्रविधियों का विकास हुआ है लेकिन किसी को पूर्ण सुनिश्चित या प्रमाणित नहीं माना जा सकता। प्रत्येक प्रविधियों की अपनी सीमाएँ है। इस स्थिति में उसकी प्रविधि या पद्धति का विकास ऐसा हो कि उसमें उपर्युक्त सभी लक्षण आयाम, पक्ष एवं पहलू समाविष्ट हो, जिससे कृति का समग्र मूल्यांकन वस्तुनिष्ठ और प्रयोजनसिद्ध हो। चूँकि अनुवाद एक संश्लिष्ट प्रक्रिया है जिसकी पूर्ण प्रतिबद्धता मूल पाठ से होती है। इसलिए मूल्यांकन के सभी आधारों में मूलनिष्ठता की केन्द्रिय भूमिका रहती है। प्रो. अशोक कालरा का कथन प्रासंगिक लगता है- ‘‘पठनीयता और स्वीकार्यता को मूल्यांकन में सापेक्षित महत्त्व के आधार पर रखा गया है। इस प्रकार अनूदित पाठ के विकास के चरणों के अनुरूप मूल्यांकन के आधार निर्धारित किए गए हैं। पहले चरण में अनूदित पाठ का मूल्यांकन अनुवादक द्वारा उसमें स्थापित बोधगम्यता के परख द्वारा होता है। तीसरे चरण में पाठक के दृष्टिकोण से अनूदित पाठ की पठनीयता का आकलन किया जाता है। और चौथे चरण में यह देखा जाता है कि क्या अनूदित पाठ लक्ष्य भाषा की अपनी भाषिक परम्परा का अंग बन सकता है या नहीं। पाँचवा आधार प्रयोजन सिद्धि होता है। जो वास्तव में अनुवाद प्रक्रिया आरम्भ होने से पहले ही लागू हो जाता है और अन्त तक रहता है क्योंकि अनुवादक को अपना कार्य आरम्भ करने से पहले ही निश्चय करना होता है कि वह किसी

विशेष प्रयोजन प्रयोक्ता के लिए अनुवाद कर रहा है या सामान्य अनुवाद।"[1] इस तरह स्पष्ट है कि अनुवाद मूल्यांकन में समतुल्यता लाने के लिए उपर्युक्त सभी लक्षण, आयाम, सोपान का होना अनिवार्य है। तभी अनुवाद में वस्तुनिष्ठता ला सकते हैं।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि काव्यनुवाद भी एक सर्जनात्मक अभिव्यक्ति है, जिसमें मूल रचना के भाव और अभिव्यक्ति सौन्दर्य को लक्ष्य भाषा में यथासंभव सुरक्षित रखने का प्रयत्न किया जाता है । काव्यानुवाद के दौरान अनुवादक को कई स्तरों पर समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इसमें स्रोत एवं लक्ष्य भाषा कि प्रकृति, अनुवादक की अपनी समझ, मूल कविता की वैशिष्ट्य आदि स्तरों पर समस्याएँ आती है।

किसी पाठ के अनुवाद के बाद उसके गुण-दोषों की जांच के लिए अनुवाद मूल्यांकन किया जाता है। इसके लिए कई प्रविधियों का विकास हुया, किन्तु सभी की अपनी सीमाएं है। किसी भी प्रविधि को पूर्ण रूप से वस्तुनिष्ठ और प्रामाणिक नहीं कहा। किसी पाठ का अनुवाद के बाद उसके गुण-दोषों की जांच के लिए कई प्रविधियों का विकास हुया, किन्तु सभी की अपनी सीमाएं है। किसी भी प्रविधि को पूर्ण रूप से वस्तुनिष्ठ और प्रामाणिक नहीं कहा जा सकता है। अनूदित रचना में उत्कृष्ट अनुवाद कसौटी को आधार बनाया जा सकता है।

अगले अध्याय के अंतर्गत कबीर के काव्य की विशेषताओं का विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है।

---

[1] डॉ. गार्गी गुप्त, (संपा.) अनुवाद : बोध पृ.-114